श्रीबाबामहाराज का ब्रज-प्रेम

'रसीली ब्रजयात्रा -१' से संग्रहीत

संकलनकर्त्री –बाल साध्वी दया जी, मानमन्दिर, बरसाना

ब्रज-संस्कृति के संरक्षक, प्रवर्द्धक, उद्धारक, उच्च कोटि के गायक, संगीत, नृत्य, संस्कृत के गूढ़ ज्ञाता एवं श्रीजी के परम कृपापात्र श्री रमेश बाबा जी विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों के भक्ति रहस्यों का सरल भाषा में विवेचन, महापुरुषों के पदों एवं भक्तों के चरित्रों का गायन त्रैकालिक सत्संग द्वारा प्रतिदिन गत ६० वर्षों से जनमानस को सुलभतापूर्वक उपलब्ध कराते आ रहे हैं। बाबाश्री की अन्तरंग स्थिति का अनुमान उनके द्वारा पदों की रचनाओं में तथा गायन से उद्‌बोधित होता है । बाबाश्री के गाये पदों को सुनने मात्र से ही अनेक जीवों में आमूल परिवर्तन होते देखा गया जो जीवनपर्यन्त साधनाओं द्वारा भी संभव नहीं – महापुरुषों के सत्संग का प्रभाव ही ऐसा है।

'ब्रजभूमि' भारतीय जनमानस के आकर्षण का केन्द्र रही है क्योंकि भारत की संस्कृति का यह मूल आधार है। भगवान् श्रीकृष्णावतरण क्षेत्र व लीलास्थली होने से करोड़ों भक्तों की आस्था भी यहाँ से जुड़ी है तभी तो भारतवर्ष के ही नहीं अपितु सारे संसार से श्रद्धालु यहाँ आते हैं, दर्शन करते हैं व इस पवित्र भूमि की परिक्रमा करते हैं। परिक्रमा तो जगत-पिता ब्रह्मा ने भी गौवत्स एवं ग्वाल-बाल हरण के पाप से निवृत्ति के लिए की थी और वे निष्पाप हुए। ब्रजरज का सेवन आज के बड़े से बड़े पापात्माओं को भी निर्मल बनाने वाला है। ऐसी महिमा किसी अन्य पुण्य कार्यों में नहीं है, तभी तो बड़े-बड़े संत-महन्त, राजा-महाराजा अपना कुल, वैभव, धनधान्य छोड़कर यहाँ की रज का आश्रय लेते हैं परन्तु कालक्रम से लुप्तप्रायः होता हुआ ब्रज का स्वरूप यथा समय महात्माओं को उद्वेलित करता रहा है। चैतन्य महाप्रभु, वज्रनाभजी, नारायणभट्टजी आदि ने ब्रज को प्रकट किया, बचाया परन्तु कलिकाल जैसे सब कुछ निगल ही जायेगा। बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ, आधुनिक सुख-सुविधाएँ तथा हमारी महत्वाकांक्षाओं ने स्वरूप को और भी विकृत कर दिया फिर भी सनातन नाम वाली यहाँ की संस्कृति अपने नाम से भ्रष्ट कैसे हो सकती है। भगवान् महापुरुषों के रूप में अवतरित होकर जीवों के कल्याणार्थ उसे सदा जीवित रखते हैं। ऐसे ही परम पुरुष विरक्त संत श्रद्धेय श्रीरमेशबाबाजी, जो प्रयाग की पावन भूमि में अवतरित हो बाल्यकाल से ही ब्रजाराधन का स्वप्न देखते हुए वैराग्य ग्रहण कर श्रीधाम बरसाना के ब्रह्माचल पर्वत पर मानिनी श्रीराधा के तत्कालीन खण्डहर भवन 'श्रीमानमन्दिर' में रहे। उस समय यह स्थल चोर-डाकुओं का अड्डा था परन्तु महापुरुष अपनी पावन सन्निधि से जनमानस को तो पवित्र करते ही हैं साथ ही क्षेत्र के भौम स्वरूप को भी सजाते-संवारते हैं, वही किया श्री रमेश बाबा जी ने। लुप्त प्रायःहोते हुए ब्रज के स्वरूप को उन्होंने पिछले ६० वर्षों के अथक प्रयास से बचाया। श्रीबाबामहाराज द्वारा ब्रज के लिए विविध संप्रयासों का संक्षिप्त उल्लेख "**रसीली ब्रजयात्रा**" (जो ब्रजबालिका मुरलिकाजी की अद्भुत रचना है) में ब्रजभक्तों के स्वान्तः सुखार्थ आवश्यक समझकर किया गया है | जैसे –

ब्रज के वनों का संरक्षण व वृक्षारोपण

वन, उपवन, प्रतिवन, अधिवनों से आवृत यह ब्रजभूमि बड़ी रमणीय थी। भगवान् ने अपनी लीलाएँ किन्हीं भवनों में नहीं की बल्कि ये वन ही उनकी लीलाओं के केन्द्र थे। धीरे-धीरे सारे वन नष्ट हो गये, मात्र कुछ वन ही बचे थे, उन्हें भी भूमाफियाओं की कुदृष्टि लगी हुयी थी। ऐसे वनों में श्रीकिशोरीजी के निज करकमलों से लगाया हुआ

गह्वरवन भी समाप्ति के कगार पर था परन्तु "श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान" के वीतरागी संत श्रीरमेश बाबाजी ने ४० वर्ष के संघर्ष के बाद बचाया; श्रीगह्वरवन का संरक्षण कोई सहज में नहीं हुआ, निरन्तर ४६ वर्षों तक लोगों का विरोध सहना पड़ा और अन्त में श्रीजी ने ही इसकी रक्षा कराई, ऐसे ही ब्रज के अनेक वन संरक्षित हुए और विभिन्न ब्रजलीलास्थलियों में सघन वृक्षारोपण किया गया (आज सारे ब्रज में लाखों वृक्ष 'श्रीमानमन्दिर' द्वारा लगाए जा रहे हैं।)

ब्रज के सरोवरों का संरक्षण

राधा-कृष्ण की लीलाओं के साक्षी अनेक सरोवर भी रहे जिनमें वे स्नान करते। ब्रज में कितने कुण्ड थे यह तो कल्पनातीत है, अकेले नंदग्राम में ही ५६ कुण्ड थे, काम्य वन में ८४ कुण्ड थे। शनैः-शनैः कुण्ड भी लोगों की वासनाओं के शिकार होते गये। 'श्रीमानमन्दिर' द्वारा ब्रज के अनेक कुण्डों का जीर्णोद्धार किया गया।

ब्रज के दिव्य पर्वतों की सुरक्षा

ब्रज में यों तो त्रिदेव, पर्वतों के रूप में विराजमान हैं। गोवर्द्धन में गिरिराज जी स्वयं विष्णु भगवान् बने हैं, नन्द गाँव में शंकर जी नन्दीश्वर पर्वत तथा बरसाना में ब्रह्मा जी ब्रह्माचल पर्वत, इसके अतिरिक्त अष्टकूट, आदिबद्री, कनकाचल, सखी गिरि, रंकु पर्वत आदि अनेक पर्वतों के रूप में देवगण अवतरित हैं। इन पर्वतों पर खनन माफियाओं की ऐसी कुदृष्टि हुई कि अत्याधुनिक मशीनों तथा विस्फोटकों से इन्हें नष्ट किया जाने लगा। 'श्रीमान मन्दिर' द्वारा इन सबका विरोध हुआ परन्तु धनाढ्य व मदान्ध माफियाओं ने ब्रज लीला के साक्षी व केन्द्र इन पर्वतों के धार्मिक व ऐतिहासिक महत्व को न समझकर सरकारी तन्त्र के साथ मिलकर धन के बल पर नष्ट करने का प्रयत्न पूरी शक्ति के साथ किया। ईश्वरी शक्ति से आज तक कौन जीत पाया है। सखीगिरि पर्वत पर ब्रज रक्षक संत श्री रमेश बाबा महाराज ने अनशन प्रारम्भ कर ब्रज के दिव्य पर्वतों की रक्षा का संकल्प लिया। यद्यपि पचास वर्ष पूर्व भी उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्रीसंपूर्णानंद से मिलकर ब्रज के खनन को बन्द कराया था परन्तु वर्तमान संघर्ष ने सारे ब्रज को ही नहीं अपितु राज्य सरकारों तक को झकझोर दिया था। अंत में अधिकांश कई हेक्टेयर भू-भाग को आरक्षित वन क्षेत्र घोषित कराकर ब्रज-रक्षा का महत्त्वपूर्ण कार्य सुसम्पन्न किया। इसमें कई भक्तों ने अपनी जान जोखिम में डालकर बड़ी-बड़ी विपत्तियों का सामना किया क्योंकि ब्रज-लीलास्थलियाँ उनको प्राणों से भी अधिक प्रिय थीं। उनका संरक्षण किसी आराधना से कम नहीं था।

गौमाता की संरक्षा

ब्रजाराध्य श्रीकृष्ण को गायों से जितना प्रेम था उतना किसी से नहीं। यही कारण था कि उन्होंने गिरिराज पूजा कराई। गौपालन व गौचारण नंगे पैर किया। गोपाल के ब्रज में आज गायों की दुर्दशा से कोई अनभिज्ञ नहीं है। जिसे भारतवासी माँ कहते हैं वही माँ आज घरों से बाहर दर-दर की ठोकर खाती भटकती है या मांसाहारियों द्वारा दर्दनाक मृत्यु को प्राप्त होकर अस्तित्व को खो रही है। संत हृदय नवनीतवत् होता है। इस कारण 'श्रीमानमन्दिर' के महाराजश्री ने गौरक्षा का विशेष अभियान २००७ में प्रारम्भ कर एक गौशाला की स्थापना "माता जी गौवंश संस्थान" के रूप में की, जिसमें ब्रज की अनाथ गायें तो पलती ही हैं, इसके अतिरिक्त बाहर से भी गायें यहाँ आती रहती हैं। एकमात्र यह ऐसी गौशाला है जहाँ गायें आती हैं तो मना नहीं किया जाता। ५-६ वर्षों में ही आज उत्तर प्रदेश की सबसे बड़ी गौशाला यहाँ बन गई, जिसमें लगभग ५५,००० गौवंश मातृवत् पल रहा है। गाय के गोबर, मूत्र के विविध उत्पादों के द्वारा ब्रज वासियों को धन सम्पन्न बनाना, निरोग बनाना, अन्यान्य लाभ दिलाना यह भी संकल्प उक्त

संस्था का है, जिस पर कार्य प्रारम्भ हो रहे हैं। ब्रजवासी, ब्रजभूमि, भगवान् सभी का एक स्वरूप है, तीनों की सेवा लक्षित है।

श्रीयमुनामहारानी की संरक्षा का संप्रयत्न

यमुना जी के बिना ब्रज की महारानी (श्रीराधा) ने भी धराधाम पर आना स्वीकार नहीं किया था। ऐसी पतित पावनी यमुना महारानी आज ब्रज में हैं ही नहीं। यह बात ब्रज में अज्ञात थी, इस पर भी 'श्री मानमन्दिर' द्वारा शोध कार्य किया गया। प्रयाग से दिल्ली तक पदयात्रा कर जन-चेतना जागृत की गई। हथिनी कुण्ड (हरियाणा) में यमुनाजी को रोक लिया गया है। १४० कि.मी. तक एक बूँद भी यमुना जल यमुना तल पर नहीं रहता। ब्रज में दिल्ली का मल-मूत्र ही आता है। कभी यमुना के निर्मल जल से सारा ब्रज पोषित था लेकिन आज वह जल विषरूप हो गया है। 'श्रीमानमन्दिर' से यमुनाजी को लाने का बड़ा भारी प्रयत्न हुआ। लाखों ब्रजवासियों, भक्तों, श्रद्धालुओं द्वारा दिल्ली तक पदयात्रायें हुईं परन्तु सरकारी आश्वासनों ने संकल्प पूर्णरूपेण पूर्ण होने नहीं दिया परन्तु बाबाश्री का संकल्प भविष्य में अवश्य पूर्ण हो जायेगा ऐसा विश्वास है क्योंकि आज तक उनका कोई संकल्प अधूरा नहीं रहा। भगवल्लीलाओं की प्रमुख केन्द्र श्रीयमुनामहारानी हैं।

हरिनाम प्रचार-प्रसार

ब्रजवासी वही है जो सतत् श्रीकृष्ण स्मरण चिन्तन करता है। ब्रजगोपियों के प्रत्येक कार्य में श्रीकृष्ण ही लक्ष्य होते थे। ऐसे ब्रज में आज आधुनिक परिवेश ने पुरातन स्वरूप को बिल्कुल मिटा दिया। इसे देखकर दयाद्रवित पूज्य श्रीरमेश बाबाजी ने गाँव-गाँव भगवन्नाम की अलख जगाने का बीड़ा उठाया। ब्रज एवं देश के लगभग ३२,००० से अधिक गाँवों में भगवन्नाम प्रभात फेरियाँ प्रारम्भ कराई। इससे घर-घर चेतना फैली और कृष्ण-कीर्तन होने लगा।

श्रीराधारानी ब्रजयात्रा

ब्रज-सेवा के कार्यों में बाबाश्री की 'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा' भी अपने में अलौकिक है। बाबा को यह अच्छा नहीं लगता था कि धनाभाव में कोई भावुक भक्त ब्रजयात्रा से वंचित रहे, इसके लिए उन्होंने सन् १९८८से पूर्ण रूपेण निःशुल्क वार्षिकी ब्रजयात्रा प्रारम्भ की, जिसमें इस समय लगभग २०,००० ब्रजयात्री सम्मिलित होकर अपने भाग्य को सराहते हैं। यात्रियों के भोजन, आवास एवं उपचार आदि की समस्त सेवाएँ 'श्रीमानमन्दिर' द्वारा ही कराई जाती हैं। सतत् हरिनाम संकीर्तन से यात्रा का प्रत्येक क्षण, रस और प्रेम की अनुभूति कराता रहता है। ब्रज के दुरूह स्थलों की महिमा का उल्लेख बाबा महाराज द्वारा प्रतिदिन नृत्य-आराधना के पश्चात् किया जाता है। यही यात्रा है जिसने जाने कितनों को श्रीराधामाधव का अनन्य उपासक बनाकर सांसारिक मोह-माया से सदा-सदा के लिए दूर कर दिया। "रसीली ब्रजयात्रा" की लेखिका बाल विदुषी मुरलिकाजी भी इसी यात्रा से संस्कारवती होकर पूज्य श्रीबाबामहाराज की अनुकम्पा से देश की विदुषी भागवत प्रवक्त्री बनीं। ब्रजयात्रा में सुश्री मुरलिकाजी का अद्भुत योगदान चला आ रहा है। भागवत-कथाओं से प्राप्त दैवी द्रव्य का बिना स्पर्श किये ही निःस्पृह भाव से सर्वसमर्पण ब्रज-सेवा में हो जाता है। यही नहीं जिस परिवार में वे पली-पोसी हैं, वह भी बड़ा अलौकिक है जहाँ रोजाना हजारों वैष्णव-संत-भक्त प्रसाद पाते हैं, इस तरह 'श्रीमानमन्दिर' द्वारा ब्रज की जो सेवा हो रही है, उससे भगवद्भक्ति, ब्रज-भक्ति, वैष्णव-भक्ति की प्रेरणा जीव-जगत को संप्राप्त हो रही है।

यस्य नाहङकृतो ..... हन्ति न निबध्यते ॥

(गी. १८/१७)

भगवान् कहते हैं कि अगर तुम इतने बड़े पापी भी हो कि विश्व द्रोह करके आये हो, परन्तु यदि तुम मेरी शरण में आ जाओ तो तुरन्त उसी समय क्षमा कर दिये जाओगे।

ब्रजगोपियों की प्रेम-शक्ति

'रसीली ब्रजयात्रा -१' से संग्रहीत

संकलन/लेखन- डॉ.रामजीलाल जी शास्त्री बी.एस.सी.,एम.ए.द्वय(हिंदी,संस्कृत)
बी.एड.आचार्य (साहित्य),पी.एच.डी., अध्यक्ष- मान मन्दिर सेवा संस्थान, बरसाना

ब्रजगोपी वल्लभ नन्दनन्दन तुच्छ छाछ पर नाच रहे हैं क्योंकि गोपियों का ऐसा प्रेममय भाव ही है, इसीलिये तो परमानन्ददासजी ने 'गोपियों को प्रेम की ध्वजा' कहा।

"गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्" – अब कोई इसमें तर्क करे कि ऐसे ही छाछ दे देतीं; क्यों नचाया, क्यों लालच दिया? इस 'क्यों' का उत्तर नहीं है, ये लीला वैचित्री है, प्रेम में ये ही सब होता है। प्रेम सुप्तानन्द नहीं है, ब्रह्मानन्द को सुप्तानन्द बताया; प्रेम जाग्रत आनन्द है। प्रेम हँसता है, बोलता है, लीला करता है। ....

.... नारद जी गये एक बार ब्रज में – तो एक कुञ्ज में देखा कि एक गोपी बैठी ध्यान लगा रही है, तो बड़ा आश्चर्य हुआ कि गोपी क्यों ध्यान लगा रही है? ध्यान आदि का फल तो प्रभु हैं, वह मिल गये तो बड़ा आश्चर्य है कि इसको ध्यान आदि लगाने, आँख बन्द करने की क्या जरूरत है? थोड़ी देर में उठी तो नारद जी ने पूछ लिया कि "देवी ! आप ध्यान क्यों लगाती हैं? आपको तो साक्षात् कृष्ण प्राप्ति है।"

गोपी बोली - "नारदजी ! हमने सुना था कि निर्विकल्प समाधि होती है उसमें कुछ भी स्फुरणा नहीं होती है तो सोच रही हूँ कि निर्विकल्प समाधि लग जाए।"

नारद जी बोले – "क्यों?"

गोपी बोली – "कृष्ण को भुलाने के लिये, इसको हृदय से निकालने के लिये, यह हृदय से हटता नहीं है।"

(कौन समझ सकता है गोपियों का यह प्रच्छन्न प्रेम।) योगी कृष्ण को स्मरण करने के लिए प्रयत्न करते हैं और ये गोपी कृष्ण को भुलाने का प्रयत्न कर रही है। ये क्या है? प्रेम की लीला है।

प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन्मनो धित्सते
बालासौ विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहरन्ती मनः।
यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते
मुग्धेयं वत पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रान्तिमाकाङ्क्षति॥

(श्रीविदग्धमाधव, द्वितीय अंक -६३)

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत
करावापि गृह्यकृत्ये। पादौ पदं न चलतस्तव
पादमूलाद् याम कथं व्रजमथो करवाम किं वा॥

(श्रीमद्भागवत १०/२९/३४)

रास में कहते हैं श्रीकृष्ण – "तुम जाओ घर।"

गोपियाँ बोलीं – "कैसे जाएँ? सारी इन्द्रियाँ चित्त के आधीन काम करती हैं, चित्त तो तुम्हारे पास है। हाथ आदि तुमने जकड़ लिए हमारे, जो हम घर का काम करती थीं, हमारे पाँव उठ ही नहीं रहे हैं, हम जाएँ कैसे?" ये प्रेम की स्थिति है, प्रेम ने जड़ता उत्पन्न कर दिया; जाना चाहती हैं किन्तु नहीं जा सकती हैं। श्री कृष्ण कह रहे हैं –'जाओ' लेकिन नहीं जा सकतीं क्योंकि प्रेम ने जकड़ दिया है। प्रेम बलवान है तब ही तो कृष्ण को नचाता है। प्रेम बलवान है जो ब्रह्म को बाँध देता है। श्रीकृष्ण कह रहे हैं – जाओ, बोलीं – हम जाना भी चाहती हैं, तुम्हारी बात मानना भी चाहती हैं लेकिन हमारे पाँव नहीं चलते हैं।

विसृजति हृदयं न यस्य
साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति
भागवतप्रधान उक्तः॥ (श्रीमद्भागवत ११/०२/५५)

गुणों का भी आश्रय मत करो। गुण अपने देवताओं सहित स्वतः चले आयेंगे सिर्फ अपने इष्ट के चरणों में अनुराग करो।

प्रणय (प्रेम) की रस्सी से भगवान् के हाथ – पाँव दोनों बँध जाते हैं, इतना बलवान है प्रेम और वह श्रीकृष्ण की स्वरूपाशक्ति श्रीराधिकारानी का ही स्वरूप है, तभी तो श्रीजी के आधीन रहते हैं श्री कृष्ण। प्रेम इतना बलवान है कि गोपीजनों को तो छोड़ दो, दुर्वासा जी से भगवान् ने कहा कि दुर्वासा जी ! लोग कहते हैं कि भगवान् स्वतन्त्र है (ईश्वर किसी के आधीन नहीं है); ऐसा नहीं है।

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

(श्रीमद्भागवत ९/४/६३)

मुझसे ज्यादा तो पराधीन कोई नहीं होगा, मैं पराधीन हूँ भक्तों के, स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरा हृदय भी भक्तों ने काबू में कर लिया है। फिर गोपीजनों के प्रेम की तो बात ही क्या है? (गोपियाँ प्रेम की सीमा हैं) इसीलिए गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद् गोपियाँ छोटी-छोटी चीजों (छाछ आदि) का लालच देकर श्री कृष्ण को नचाती हैं; छाछ कोई मूल्यवान वस्तु है !

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद् भगवान् बालवत् क्वचित्।
उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत्॥

(श्रीमद्भागवत १०/११/०७)

गोपियाँ कृष्ण को नचाने के लिए चकई-चकवा आदि छोटे-छोटे खिलौनों का लालच देती हैं –

नन्द के तोय खिलौना लै दूँगी,
मेरे अँगना में मुरली बजाय।

ये 'स्तोभितो' शब्द का अर्थ है, (गोपी श्रीकृष्ण को) लालच दे रही है। श्रीकृष्ण नाचते हैं, वंशी बजाते हैं; खिलौना जब लेने आते हैं तो (गोपी) हाथ ऊपर कर लेती है कि अभी खिलौना नहीं दूँगी और नाच।

मैं दूँगी तोय माखन-मिश्री लाला,
मेरे संग-संग ठुमके लगाय॥
मैं दधि बेचन जाऊँ वृन्दावन,
मोहि मिलियो कदम्ब की छाँय।
चन्द्र सखी भज बाल कृष्ण छवि,
मैं तेरी बलि जाऊँ॥

स्तोभितो – लालच दे रही है। पूर्णकाम, आप्तकाम, सत्यकाम, आत्माराम में ये 'प्रेमा शक्ति' क्षुधा उत्पन्न कर देती है भक्तों की प्रेम भावनाओं का आस्वादन करने के लिए।

❋ ब्रजधाम-निष्ठा ❋

सतत् सेवन केवल धाम का ही सम्भव है।

जिस पाप व कष्ट को अन्य साधन नष्ट नहीं करते, उसे धाम नष्ट कर देता है। श्रीपाद प्रबोधानंद जी ने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि कोई पतित, नीच या साधनहीन भी है और यदि वह भी निष्ठा से धाम का आश्रय ले ले तो वह अवश्य धामी से मिल जायेगा। किसी वस्तु का सतत् सेवन ही सिद्धि प्रदान करा सकता है। सतत् सेवन केवल धाम का ही सम्भव है। अन्य साधनों में बाधायें उपस्थित होती रहती हैं। धाम निष्ठा बड़ी विचित्र होती है। धाम में तो सोना भी भजन है।

असीम अनुग्रहकारी 'अवतरित धाम'

'रसीली ब्रजयात्रा -१' से संग्रहीत

लेखिका - व्यासाचार्या साध्वी मुरलिका जी, मानमंदिर, बरसाना

जिस प्रकार प्रेमी रसिकजन नामी से नाम को श्रेष्ठ कहते हैं –

"कहउँ नामु बड़ राम तें निज विचार अनुसार"

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड -२३)

अथवा – प्रभु के जनों को प्रभु से श्रेष्ठ मानते हैं, स्वयं भगवद्वाक्य है – **'मद्भक्तपूजाभ्यधिका'**

(भागवत११/१९/२१)

उसी प्रकार सच्चे भावुक भक्त 'धाम' को धामी से श्रेष्ठ मानते हैं।

"विपिनराज सीमा के बाहर हरिहू को न निहार।"

(श्रीभट्ट जी)

महावाणी में धाम-महिमा –

यही है यही है भूलि भरमो न कोउ भूलि भरमे ते भव भटक मरिहौ। लाड़िली लाल के नित्य सुखसार बिन कौन विधि वार ते पार परिहौ॥ एक अनन्य की टेक उर में धरौ, परिहरौ भर्म ज्यौ फूल फरिहौ। 'श्रीहरिप्रिया' के परमपद पास ही, आसु अनिवास ही वास करिहौ॥ (महावाणी-२९५)

छीतस्वामीजी ने भी इसी ब्रज भूमि की याचना की है –

अहो विधना तोपैं अँचरा पसारि माँगौं, जनमु-जनमु दीजै याही ब्रज बसिबौ। अहीर की जाति, समीप नंद घर घरी घरी स्याम हेरि हेरि हँसिवौ॥ दधि के दान मिस ब्रज की बीथिनि में, झक झोरनि अंग-अंग को परसिवौ। 'छीत स्वामी' गिरिधरन श्री विट्ठल, सरद रैनि रस-रास कौ बिलसिवौ॥

गोविन्द स्वामी की ब्रज निष्ठा –

कहा करों वैकुण्ठहि जाय।
जहाँ नहीं वंशीवट यमुना गिरिगोवर्धन नन्द की गाय॥
जहाँ नहीं यह कुंज लता द्रुम मंद सुगन्ध बहत नहिं वाय।
कोकिल हंस मोर नहिं कूजत, ताको बसिबो काहि सुहाय॥
जहाँ नहीं वंशी धुनि बाजत कृष्ण न पुरवत अधर लगाय।
प्रेम पुलक रोमांच न उपजत, मन वच क्रम आवत नहीं धाय॥
जहाँ नहीं यह भुवि वृन्दावन, बाबा नन्द यशोमति माय।
'गोविन्द' प्रभु तजि नन्द सुवन को, ब्रज तजि वहाँ मेरी बसै बलाय॥

"जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजःश्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।"

(श्रीमद्भागवत १०/३१/१)

तभी तो इंदिरा भी शश्वदाश्रय लिए बैठी हैं।

ब्रह्माजी से प्रसन्न होकर तो प्रभु ने अपना निगूढ़ रहस्य स्पष्ट कर दिया –

श्रीभगवानुवाच –

यावानहं यथाभावो यद्रुपगुणकर्मकः।
तथैव तत्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥

(श्रीमद्भागवत २/९/३१)

'यावानहम्' – जितना मैं हूँ, "मैं" से तात्पर्य मेरा धाम एवं मेरा परिकर। यथाभाव – नित्य सत्ता भगवान् का रूप, गुण और लीलाएँ ये सब भी स्वयं भगवान् हैं। माता कुन्ती ने कहा – "भगवल्लीला गाने से अतिशीघ्र भगवद् प्राप्ति हो जाती है" और इस लीला की निष्पत्ति धाम एवं परिकर के बिना अशक्य ही है। अतएव कारुण्य-कल्लोलिनी-रासोत्सवोल्लासिनी श्रीराधा की अमित कृपा-दया से ही धाम का धरा पर अवतरण हुआ। जिस समय वाराह प्रभु के दन्ताग्र पर पृथ्वी स्थिर थी, पृथ्वी ने प्रश्न किया – "प्रभो! सम्पूर्ण संसार प्रलय जल से भरा हुआ है। अतः आप मुझे कहाँ स्थापित करेंगे? " प्रभु ने कहा – "जहाँ वृक्ष दिखाई देंगे, वहीं तुम्हारी स्थापना होगी," किन्तु "प्रभो! मेरे बिना वृक्ष कहाँ होंगे? मैं ही तो उनका एकमात्र आश्रय स्थान हूँ। क्या कोई और भी धरणी है? " पृथ्वी ने पूछा, तब तक कुछ वृक्षावली दिखाई पड़ी, "यह कौन सा स्थान है प्रभो!" सविस्मित पृथ्वी ने पूछा –

माथुरं मंडलं दिव्यं दृश्यतेऽग्रे नितंबिनि।

गोलोकभूमिसंयुक्तं प्रलयेऽपि न संहृतम् ॥

(गर्गसंहिता १/५३)

श्रीभगवान् बोले – "यह मेरा ब्रज मण्डल है। जो गोलोक से संयुक्त है। प्रलय में भी इसका संहार नहीं होता है।"

"फणि पर रवि तर नहिं विराट महँ नहिं सन्ध्या नहिं प्रात।
माया काल रहित नित नूतन कबहुँ नाहिं नसात ॥"

(व्यासजी)

यह धाम मायातीत, कालातीत है, इसके आश्रय से मनुष्य भी कालातीत हो जाता है। सदा सुलभ होने से वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ है –

"अहो मधुपुरी रम्या वैकुण्ठाच्चगरीयसी"

(वाराहपुराण)

इस धाम के लिए भगवान् अपना नित्य धाम वैकुण्ठ भी त्याग देते हैं –

हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय ।
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥

(भागवत-माहात्म्य ३/७३)

वैकुण्ठ अप्राप्य है किन्तु यह अवतरित धाम, ये पुरियाँ अप्राप्य नहीं हैं, ये सदा-सर्वदा सुलभ हैं। जिस प्रकार भगवान् जन-कल्याणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं –

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं।
कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड -१२२)

उसी प्रकार धाम पापात्माओं पर भी दया करता है –

ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृष्याश्च ये।
सर्वान्वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥

(श्रीराधासुधानिधि - २६४)

ऐसे परमोदार धाम के अचिन्त्य माहात्म्य को समझ पाना भगवद्कृपैकगम्य है। ब्रज में जो भी जीव हैं, उनका क्रोध, द्वेष जब सह लिया जाता है तो शीघ्र धामवास मिल जाता है। यह धाम ही नित्य धाम की प्राप्ति कराता है। यहाँ के निवासमात्र से अप्राप्य नित्य धाम सहज प्राप्त हो जाता है। भगवद्वाक्य –

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ४)

जीवों पर धाम महाराज की कृपासे नित्य धाम एवं नित्य लीला प्राप्ति सहज है –

य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते।
हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ॥

(छान्दोग्य उपनिषद् १/६/६)

सुवर्णमय वह पुरुष जिसके केश इत्यादि सब कुछ चिन्मय हैं। नख-शिख पर्यन्त दिव्यत्व से आपूरित है। जिस प्रकार सूर्यलोक का धामी सूर्य दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार यहाँ धाम में भी धामी का चिन्मय स्वरूप दिव्य दृष्टिगोचर होता है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मयो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ॥

(तैत्तीरीय उपनिषद् २/१/२)

परमे व्योमन् अर्थात् धाम, धाम में धाम के अधिदैव का रूप सगुण-साकार होता है, धाम में जीव ब्रह्म के साथ दिव्य सौगन्ध्य, सौशब्द्य, सौस्पर्श्य आदि का उपभोग करता है। ऐसे धाम की महिमा दुष्प्रवेश है –

यद्राधा-पद-किंकरीकृतहृदां सम्यग्भवेद्गोचरं ध्येयं
नैव कदापि यद्धृदि विना तस्याः कृपा-स्पर्शतः।
यत्प्रेमामृतसिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि
तद्वृन्दावन दुष्प्रवेश्यमहिमाश्चर्यं हृदि स्फूर्जतु ॥

(श्रीराधासुधानिधि - २६५)

धामवास कदापि निष्फल नहीं जाता है। कल्पों के अन्तराल के उपरान्त भी इसके फल की प्राप्ति होती है, जैसे काकभुशुण्डिजी को हुई। दुर्भिक्ष के कारण एक बार ये उज्जैन चले गए। वहाँ शैवोपासना करने लगे। साथ ही विष्णुद्रोह भी करने लगे। गुरु ने समझाया भी, विपरीतमति होने के कारण गुरु में ही अभावोत्पन्न हो गया। अनन्यता की ओट में संकीर्णता का पोषण एवं गुरुद्रोह करने लगे। एक समय गुरु को प्रणाम न किया। गुरु के परमोदार हृदय ने ध्यान भी न दिया किन्तु शशांकशेखर शम्भु इस

अपराध पूर्ण संकीर्णता को सह न पाए और शाप दे दिया, "जा ! तामसी योनि में चला जा, एक हजार बार और जन्म-मरण को प्राप्त कर" । शाप से कोमल हृदय गुरु को संताप हुआ एवं उन्होंने रुद्राष्टक द्वारा शिव स्तुति की, साथ ही प्रार्थना की – "हे शम्भो ! यह बेचारा जीव है, आप इस पर कृपा करें, जिससे आपका शाप इसके लिए वर बन जाए ।" गुरु की साधुता पर प्रसन्न हो कर शम्भु ने कहा – "यह सहस्र बार जन्म-मृत्यु तो निश्चित पायेगा किन्तु उसके दुःसह कष्ट से उन्मुक्त हो जाएगा । इसके अतिरिक्त किसी भी जन्म में इसकी ज्ञान हानि नहीं होगी ।"काकभुशुण्डि से शिव वचन – "हे शूद्र ! कई कारणों से तुझे इस विशेष कृपा की प्राप्ति हुई है –

रघुपति पुरीं जन्म तब भयऊ ।
पुनि तैं मम सेवाँ मन दयऊ ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - १०९)

प्रथम तो तेरा जन्म धाम में, श्रीराघवेन्द्र सरकार की पुरी में हुआ, द्वितीय तूने अपना मन मुझमें संजोया, धाम की कृपा एवं मेरी कृपा से तेरे हृदय में राम भक्ति का उदय होगा ।" शाप के सहस्र वर्ष होने ही वाले थे । चरम शरीर में लोमश जी के शाप से कौआ बन गये किन्तु शाप का कोई प्रतिकार नहीं किया तब सप्रसन्न ऋषि ने राम मन्त्र देकर अनेकों दुर्लभ वर दिये । राम भक्ति का वर, इच्छा मृत्यु का वर, ज्ञान-वैराग्य के निधान होने का वर, जहाँ भी रहोगे, एक योजन पर्यन्त माया दूर देश में रहेगी, बिना श्रम के भगवच्चरित्र का सम्यक ज्ञान, तो इन सभी दुर्लभ वरों का मुख्य कारण धाम वास था । काकभुशुण्डि जी कहते हैं – "अब भी जब जब अवधपुरी (अवतरित) धाम में प्रभु लीला करते हैं, मैं पहुँच कर दर्शनानन्द प्राप्त करता हूँ ।"

जब जब अवधपुरीं रघुबीरा । धरहिं भगत हित मनुज सरीरा ॥
तब तब जाइ राम पुर रहऊँ । सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ११४)

यह तो रामोपासना की चर्चा थी, कृष्णोपासना में भी हम देखते हैं । 'गर्गसंहिता' गिरिराज खण्ड में विजय ब्राह्मण की चर्चा हुई । एक राक्षस जो कि पूर्व जन्म में धनाढ्य वैश्य था । कई कल्पों तक कष्ट भोगने के पश्चात गिरिराज जी की एक शिला स्पर्श से उसे भगवद्धाम की प्राप्ति हो गई । (यह कथा आगे श्रीगिरिराज जी में सविस्तृत दी है) कथनाशय है कि धाम वास अमोघ है, यह कभी व्यर्थ नहीं जाता है । धाम वास का फल अवश्य मिलता है, यह अनेकों कल्पों के पश्चात् भी अपना प्रभाव दिखाता है । श्रीठाकुर जी का अवतार कृपापरवश होता है –

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

(श्रीमद्भागवत १०/३३/३७)

यहाँ 'तादृशी क्रीडा' से तात्पर्य है, प्रभु ऐसी लीला करते हैं, जिससे जीव तत्परता को प्राप्त हो जाए । यह रास लीला उनकी अनुग्रह लीला है । प्रभु भक्तों के लिए नाचते हैं, चोरी करते हैं, दधि दान लेते हैं, छेड़छाड़ करते हैं, भक्तों की चाकरी करते हैं । उत्तरा के घृणित गर्भ में प्रवेश करते हैं, माधव दास जैसे भक्तों की संग्रहणी में मल-मूत्र भी धोते हैं, भीलनी के जूठे बेरों को खाते हैं, ग्वालों की जूठन भी खाते हैं –

"ग्वालन कर ते कौर छुड़ावत ।
हा-हा करके मांग लेत हैं, कहत मोहि अति भावत ॥"

(श्रीसूरदासजी)

ये सब अनुग्रह लीलाएँ हैं । धामावतार उनकी कृपा लीला का पूरक है ।

धाम का अवतार प्रभु की इच्छा पूर्ति हेतु होता है –

"चारि खानि जग जीव अपारा ।
अवध तजें तनु नहिं संसारा ॥"

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - ३५)

और प्रभु की इच्छा है कि जीव बिना श्रम के, बिना विलम्ब के मेरे समीप आ जाय ।

ध्रुव स्तुति के अंतर्गत प्रभु को अनुग्रह कातर कहा गया –

सत्याऽऽशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म
माशीस्तथानुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ।
अप्येवमर्य भगवान् परिपाति दीनान्
वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥

(श्रीमद्भागवत ४/९/१७)

यहाँ प्रभु को वाश्रा कहा गया, वाश्रा (अलब्याई गाय) अपने सद्योत्पन्न वत्स की गर्भ से आई गन्दगियों को भी रूचि पूर्वक चाटती है और उसे शुभ्र बना देती है, उसे उन गन्दगियों को चाटने में भी आनन्दानुभूति होती है।

इसी प्रकार धाम जीव के अक्षम्य अपराधों को चाट जाता है। इस धाम ने जगत-जननी श्री सीता जी के निन्दक नर-नारियों के अक्षम्य पाप समूहों को नष्ट कर उन्हें शोक रहित करके गोद में रखा –

प्रनवउँ पुर नर-नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ॥
सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - १६)

ब्रह्माजी के भी ग्वाल-बाल एवं वत्स-हरण के पाप को धाम की परिक्रमा ने ही नष्ट किया था। ब्रह्माजी ने ब्रज की तीन परिक्रमायें कीं।

'त्रिःपरिक्रम्य'

(श्रीमद्भागवत १०/१४/४१)

"ब्रज परिक्रमा करहु देह को पाप नसावहु।"

(श्रीसूरदासजी)

धामी से अधिक अनुग्रह, वात्सल्य पूर्ण है यह धाम। तभी तो प्रभु श्री राम ने कहा –

जद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना ॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ।यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ४)

पुनः पुनः "वैकुण्ठाच्चपरात्परं" इसे कहा किन्तु इसकी यह अद्भुत महिमा अतर्क्य बुद्धि से ही गम्य है, असत् तर्क धाम-महिमा ज्ञान का अवरोधक है –

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ।
यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥

(श्रीमद्भागवत २/६/४०)

तभी तो कहा – "यह प्रसंग जानइ कोउ-कोऊ"। सात्विक श्रद्धावान ही निस्तर्क विश्वास करता है। प्रत्येक कल्प में नित्य धाम का धरा पर जब अवतरण होता है तो वह पुरी रूप हो जाता है।

जैसे साकेत अवधपुरी हो गया –

राम धामदा पुरी सुहावनि।लोक समस्त बिदित अति पावनि ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - ३५)

गोलोक मधुपुरी हो गया –

"अहो मधुपुरी धन्या बैकुण्ठाच्च गरीयसी"

(वाराहपुराण)

पुरी की कृपासे, पुरी के आश्रय से जीव भगवद्प्रियता प्राप्त कर लेता है।

श्रीराम वाक्य –

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी।मम धामदा पुरी सुख रासी ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ४)

ये पुरियाँ नित्य धामदा हैं। धाम का अवतार केवल पापियों पर अनुग्रह करने के लिए होता है। यहाँ की पुनीत नदियों का दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान ही पापों का मूलोच्छेद कर देता है –

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना ॥

भगवती सरस्वती भी इस महिमा का स्वल्प सा वर्णन नहीं कर सकती हैं, फिर अन्य देव-नरों की तो चर्चा ही क्या?

नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा बिमल मति ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - ३५)

कदा वा खेलन्तौ व्रजनगरवीथीषु हृदयं ।
हरन्तौ श्रीराधाव्रजपतिकुमारौ सुकृतिनः ॥
अकस्मात्कौमारे प्रकटनवकैशोरविभवौ ।
प्रपशयन् पूर्णः स्यां रहसि परिहासादिनिरतौ ॥

(श्रीराधासुधानिधि - ६५)

परम पातकियों को भी प्रेमामृत-सार-सिन्धु प्रदान करने वाले इस धाम की बड़ी ही दुर्गम महिमा है। इन पुरियों के प्रभाव से पृथ्वी की कीर्ति कौमुदी चतुर्दिक में प्रसरित हो रही है।

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं
यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं
प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥

(श्रीमद्भागवत १०/२१/१०)

पुरियों में लीला का विकास होता है। इसमें दुष्ट पापी लोग भी प्रवेश करते हैं और उनका कल्याण होता है। पुरी के श्रद्धा सहित सेवन से निश्चित नित्य धाम की प्राप्ति होती है।

सब विधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी ॥

(रा.बा.कां.३५)

पृथ्वी पर धाम का पुरी रूप में अवतार एक निश्चित स्थान पर होता है। जिस समय श्री भरत जी राम राज्याभिषेक के लिए अनेकानेक तीर्थ व समुद्रों का जल लेकर चित्रकूट पहुँचे तो प्रभु ने अभिषेक स्वीकार नहीं किया।

प्रश्न हुआ कि अब तीर्थ जल को कहाँ रखा जाय? तब वहाँ अत्रि मुनि ने कहा –

अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - ३०९)

"इस गिरि के समीप एक सुन्दर कूप है, उसमें यह अमृततुल्य तीर्थ जल को स्थापित कर दो।" वही कूप 'भरतकूप' नाम से प्रसिद्ध हुआ –

तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – ३१०)

यह अनादि सिद्ध स्थान है, काल प्रभाव से यह लुप्त हो गया था, अतः इसे कोई नहीं जानता था अर्थात् ये पुरियाँ अथवा लीला भूमियाँ लुप्त भी हो जाती हैं, पृथ्वी पर होने से तब उन्हें सिद्ध महज्जन प्रकट करते हैं। इसी प्रकार ब्रज भूमि जो कि कई बार लुप्त हुई, जिसे समय समय पर महापुरुषों ने, आचार्यों ने प्रकट किया, जो अनादि सिद्ध स्थल हैं, उसे दूसरे किसी भी स्थान पर नहीं रखा जा सकता है। जैसे भरत जी ने वह तीर्थ जल अन्यत्र स्थापित न करके भरत कूप में ही स्थापित किया।

गोपियों ने कहा था "इतना लक्ष्मी जी के सुन्दर-सुन्दर कोमल हाथों से पैर दबवाने में उनको (कृष्ण को) आनंद नही मिला, जितना ब्रज के काँटों में मिला। जितना ब्रज के कंकणों में मिला।" ये हालत भगवान् की है। फिर हम जैसे जो लोग हैं वे ना जाने अपने मन में क्या बनते हैं?

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः... क्रीडामनुजबालकः ॥

(भा. १०/८/३६)

अरे, यहाँ तो भगवान् ने तक अपनी भगवत्ता छोड़ दी, फिर प्रेम मिला। सम्मान में मरते जाओ तो प्रेम आदि कुछ नही मिलेगा, सिर्फ 84 लाख योनियाँ ही मिलेंगी।

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं.....भ्रवदायुषां नः ॥

(१०/३१/१९)

गोपियाँ बोलीं कि "ये वही कृष्ण हैं, जिनके चरणों को लक्ष्मी जी धीरे-धीरे दिन-रात सहलाती हैं। क्यों? क्योंकि हमारे हाथ तो कठोर हैं और प्रभु के चरण कोमल हैं। लक्ष्मी जी जैसा उनके चरणों का लालन करती हैं और जैसा प्यार करती हैं वैसा कोई भी नहीं कर सकता पर ब्रज में भगवान् काँटों में दौड़ते हैं, ब्रज में गँवारों के साथ भगवान् भी गँवार बन गये हैं।" इस ब्रज में आकर जो गँवार नहीं बना वह ब्रज भाव नहीं जान पाया ।

सर्वसाधनसार 'युगलरसमय-संकीर्तन'

रसीली ब्रजयात्रा -१' से संग्रहीत

संकलनकर्त्री - व्यासाचार्या साध्वी श्रीजी, मानमन्दिर, बरसाना

नारद उवाच –

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ।
अविच्युतोऽर्थःकविभिर्निरूपितोयदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥

(श्रीमद्भागवत १/५/२२)

"तपश्चर्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान एवं दान इन सभी कर्मों का एक मात्र प्रयोजन उत्तम श्लोक प्रभु का यशोगान है।"

श्रीब्रह्मोवाच –

पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ।
आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्ध्रियते न यत्र ॥

(श्रीमद्भागवतजी ३/९/१३)

"प्रभु को अर्पित किया गया प्रत्येक कर्म अविनाशी हो जाता है, जो कि कभी नष्ट नहीं होता है और यही अविच्युत धर्म है। यज्ञ, दान, उत्कट तप, व्रतादि सभी साधनों का सबसे बड़ा फल प्रभु की प्रसन्नता है क्योंकि प्रभु के प्रसन्न होने पर कुछ भी तो असाध्य नहीं रह जाता। प्रभु को अर्पित किये बिना क्षेम-प्राप्ति नहीं होती है।"

शुक उवाच –

सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ।
महिमैष ततो ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः ॥

(श्रीमद्भागवतजी२/६/१७)

"तप दानादि भी कल्याणकारक सिद्ध नहीं होंगे, यदि वे भगवदर्पित नहीं है तो।"

कृष्ण उवाच –

यत्करोषि तदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी ९/२७)

अतएव जो भी कुछ किया जाय – यज्ञ, दान, तपादि विशाल कर्म, भोजन करना, चलना-फिरना जैसे लघु एवं सामान्य कर्म भी भगवदर्पित हों। इसी प्रकार से यात्रा, संकीर्तन, अर्चनादि सभी आत्यंतिक क्षेम बन करके जीव को निर्भयता की प्राप्ति कराते हैं। समर्पण भी प्रभु की समक्षता में होता है। वह भोगार्पण हो अथवा कर्मार्पण, यात्रा में भी अधिदैव की समक्ष अनुभूति हो, सासंगोपासना हो, तो यात्रा रसमयी बनती है।

प्रभु की सासंग-उपासना हो, सदैव उनका सानिध्य रहे, इसका क्या उपाय है? प्रत्यक्षानुभूति तो सबको नहीं हो रही है किन्तु यह संभव है क्योंकि नाम का अधिदैव नामी होता है और वही यज्ञाधिकारी बनाता है।

"नाम के श्रवण मात्र से अधिदैव की समक्षता प्राप्त हो जाती है।" नामी की समस्त शक्ति नाम में निहित है अतः नाम की प्राप्ति को अधिदैव की प्राप्ति समझें। अतएव समस्त मतों की सफलता "नाम संकीर्तन" में मानी है –

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥

(श्रीमद्भागवतजी ८/२३/१६)

मन्त्रतस्तन्त्र .... और भी प्रकाश-स्तम्भ जाज्वल्यमान उदाहरण है – 'श्रीमानमन्दिर' से "श्रीराधारानी ब्रज यात्रा"। आज से ७० वर्ष पूर्व ब्रज यात्राओं की बहुलता थी, रसमयता थी, वह आज नहीं रही। पद यात्राएँ हट करके कार यात्रा रह गयीं। इसका कारण शारीरिक दुर्बलता ही नहीं है अपितु भावनाओं की क्षीणता भी है। प्राचीन यात्राओं में पहले प्रत्येक वैष्णव "श्री कृष्णः शरणं मम" का जप या कीर्तन करता था, वह अब नहीं रहा। इष्ट का सानिध्य न होने से, सासंगाराधना न होने से रसमयता भी नहीं रही।

पूज्य श्रीबाबा महाराज बताते हैं, आज से ७० वर्ष पूर्व स्वामी श्री हरिनाम दास जी महाराज (रमणरेती वाले) की यात्रा में कुछ कठोर नियम थे। अखण्ड हरिनाम संकीर्तन चलता था, अतः सभी साधु व यात्रियों को दो दो घंटे

कीर्तन का नियम था। आज अधिकांश यात्राओं में इस नियम की अवहेलना से क्षीणता आ गई। अल्पवयस्क "श्रीराधारानी यात्रा" मात्र २४ वर्ष पुरानी है किन्तु रसालता के साथ-साथ सर्वप्रवृद्ध हो गई है चूंकि यहाँ यात्रियों को नाम से जोड़े रखा जाता है। श्री मन्महाप्रभु चैतन्यदेव ने भी भगवन्नाम सान्निध्य को ही इष्ट सान्निध्य बताया –

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिस्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः॥

(शिक्षाष्टक-२)

महामंत्र का मूलाधार 'युगल मन्त्र'

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥"

इस महामन्त्र के अधिदैव भी श्रीयुगल सरकार हैं –

सर्वचेतोहरः कृष्णस्तस्य चित्तं हरत्यसौ।
वैदग्धीसारविस्तारैरतो राधा हरा मता॥

(श्रीजीवगोस्वामी कृत महामन्त्र व्याख्या)

अपने लोकोत्तर सौन्दर्य से, सबके चित्त का हरण करने वाली, श्री हरि के भी चित्त को जो अपने चातुर्य से हर लेती हैं, वे हरा हैं। 'हरा' नाम होने के और भी अनेक कारण हैं, कतिपय यहाँ उद्धृत हैं – श्रीकृष्ण के द्वारा हरण होने से, श्रीकृष्ण को हरि-हरि पुकारने से, श्रीजी द्वारा मुरलिका का हरण होने से, भ्रत्यों का कष्ट हरण करने से एवं श्रीकृष्ण के धैर्य का हरण करने से भी इन्हें 'हरा' कहते हैं। 'हरा' का सम्बोधन ही हरे है। राधा नाम के श्रवण मात्र से जिनके अन्तस् का अनुरागार्णव अनन्त, अपरिसीम ऊर्मियों से उद्वेलित हो संतुलन खो बैठता (राधाप्रेमरस में निमग्न होकर महाभाव में समाधिस्थ हो जाते), वे श्रीचैतन्यदेव इसी कारण राधे को 'हरे' कहकर मन को संतुलित करते।

पद्मपुराणानुसार

शिवजी ने स्वयं नारदजी को कहा है – "देवर्षे ! परात्पर ब्रह्म श्रीकृष्ण ने ही मुझे 'श्रीयुगल मन्त्र' का उपदेश किया है। एक समय कमलापति श्रीनारायण भगवान् ने प्रसन्न होकर मुझे वर माँगने को कहा, तब मैंने अपना वाञ्छित वर माँग लिया, मुझे भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन प्राप्त हों, उन्होंने मुझे वृन्दावन जाने की आज्ञा की। वहाँ पहुँचने पर चतुर-सहचरी समुदाय से समावृत युगल-रसराज का दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुआ। जिनके नील-पीत वदनाम्बुजों की मिश्रित द्युति एक दिव्य हरिताभ ज्योति का सृजन कर रही थी। प्रसन्न मन श्रीहरि ने एक गोपन रहस्य खोला।" बोले – "हे रूद्र ! यदि तुम मुझे वश में करना चाहते हो तो मेरी प्राणेश्वरी का आश्रय लो एवं युगल मन्त्रोच्चारण करते हुए सदा मेरे इस धाम में वास करो" तब तक दया-धाम प्रभु मेरे दाहिने कर्ण में युगल मन्त्र का उपदेश देकर अन्तर्हित हो गए।

राधे कृष्ण राधे कृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे।
राधे श्याम राधे श्याम श्याम श्याम राधे राधे॥

(पद्मपुराण)

प्रेम की उत्पत्ति तब ही होती है, जब जीव सब आसक्तियों को छोड़ देता है। इसलिए गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा था कि हम सब कुछ छोड़कर तुम्हारे पास आयीं हैं। अपनी सब आसक्तियों को छोड़कर आयीं हैं। क्यों छोड़कर आयीं हैं? तुम्हारी उपासना की आशा से।

मैवं विभोऽर्हति.....आदिपुरुषो भजते मुमुक्षून्॥

(भा. १०/२९/३१)

*** गौ-सेवकों की जिज्ञासा ***
श्रीमाताजी गौशाला का बैंक खाता दिया जा रहा है :-
SHRI MATAJI GAUSHALA
915010000494364

उपासनाओं का आधार 'श्रीधाम-आराधना'

'रसीली ब्रजयात्रा -१' से संग्रहीत

संकलनकर्त्री - बाल व्यासाचार्या - साध्वी गौरीजी, मानमन्दिर, बरसाना

भगवान् रुद्र को स्वयं श्रीकृष्ण ने युगल मन्त्र प्रदान किया, जिससे ब्रजोपासना की संसिद्धि हुई; बिना युगलोपासना के सिद्धि सम्भव ही नहीं है। आदि सृष्टि से मूल अंशी श्रीकृष्ण की उपासना चली आ रही है। यहाँ तक कि द्वादशाक्षर से ही मनु-शतरूपा को राम की प्राप्ति हुई –

द्वादस अच्छर मन्त्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।
वासुदेव पद पंकरूह दंपति मन अति लाग॥

(श्रीरामचरितमानसजी, बालकाण्ड - १४३)

यद्यपि बहुत खेंचा-खेंची हुई है इस विषय पर किन्तु यह सुलझी हुई निर्विवाद बात है कि द्वादशाक्षर मन्त्र –

१	२	३	४	५	६	७
	८	९	१०	११	१२	
ॐ	**न**	**मो**	**भ**	**ग**	**व**	**ते**
	वा	**सु**	**दे**	**वा**	**य**	

द्वादश माने अपने आप में जिसमें १२ अक्षर हैं, वसुदेव नंदन वासुदेव ही इस मन्त्र के इष्ट हैं। लीलादृष्टि से वे वसुदेवपुत्र हैं, शंकरजी का तो कथन है –

"सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः।
सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते॥"

(श्रीमद्भागवतजी ४/३/२३)

विशुद्ध सत्त्व को वासुदेव कहते हैं, सत्-रज से आगे विशुद्ध सत्त्व चिन्मय है। मायावादी सत्त्व गुण को विशुद्ध मानते हैं, किन्तु वास्तव में जो सत्त्व से भी परे हैं, मायातीत हैं वह विशुद्ध सत्त्व है। सत्, रज, तम इन तीन गुणों में माया है किन्तु माया का जहाँ प्रवेश नहीं है, वह विशुद्ध सत्त्व है –

प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः।
न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः॥

(श्रीमद्भागवतजी २/९/१०)

विशुद्ध सत्त्व ही वासुदेव है, जो कि उस मायातीत, कालातीत धाम में रहता है। चिदानन्दमय देह तुम्हारी। द्वादशाक्षर श्री कृष्ण परक मन्त्र से मनु को श्री सीता राम जी की प्राप्ति हुई। प्रभु के वर से मनु-शतरूपा ही राजा दशरथ एवं कौशल्या बनें तब श्री राघवेन्द्र प्रभु पुत्र रूप में अवतीर्ण हुए।

श्रीनारदजी ने ध्रुव जी को कृष्णोपासना करने को कहा –

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि।
पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः॥

(श्रीमद्भागवतजी ४/८/४२)

"ध्रुव ! तू गंगा किनारे भजन मत कर, ब्रज में चला जा इससे उपासना शीघ्र सिद्ध होगी और तेरा कल्याण होगा।" यहाँ बिठूर में गंगा भले ही है किन्तु धाम नहीं है, जहाँ धामावतार होता है, वहीं धामी की प्राप्ति अति शीघ्र होती है। धाम इन चर्म-चक्षुओं से तो प्राकृत ही प्रतीत होता है, किन्तु यह प्राकृत नहीं है। इसके अंदर एक ऐसी गुह्य शक्ति है जो बहुत शीघ्र सिद्धि देती है। धाम में धामी जितना समीप है उतना अन्यत्र नहीं तभी तो ब्रज में प्रति वर्ष करोड़ों लोग आते हैं, क्योंकि यहाँ नारद जी कह रहे हैं। "सांनिध्यं नित्यदा हरेः" यह बात कृष्णावतार के बहुत पूर्व की है। द्वापर तो क्या त्रेता युग भी उस समय नहीं था, अतः कृष्णोपासना आद्योपासना है। नारद जी कहते हैं – धाम में नित्य सानिध्य है 'श्रीहरि' का। धाम में प्रभु की नित्यता बताने के बाद, नारद जी ने कृष्ण लीला की भी नित्यता बताई – **"इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः।**
ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम्॥"

(श्रीमद्भागवतजी ४/८/६२)

नारदजी कह रहे हैं – "यह वही मधुवन है, जहाँ प्रभु ने लीलाएँ कीं, जो लीलाएँ उनकी सम्पन्न हो चुकी हैं, उनका

ध्यान करना, यह स्थान कृष्ण चिन्हों से अंकित है। यहाँ सब लीलाएँ हो चुकी हैं।"

स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया।
करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयङ्गमम्॥

(श्रीमद्भागवतजी ४/८/५७)

पूर्व श्लोक में जो लीला हो चुकी हैं, उनके लिए कहा। अब यहाँ इस श्लोक में भावी लीला का ध्यान करने को कहा। नारद जी बोले – "ध्रुव ! मधुवन पहुँच कर तुम आगे होने वाली कृष्ण लीला का ध्यान करना, इससे मन प्रभु में जल्दी लग जाएगा।" नित्य धाम में ये समस्त लीलाएँ नित्य होती रहती हैं, वैकुण्ठ से श्रेष्ठ लीला अवतरित धाम में होती हैं। ध्रुव जी ने भी कृष्ण परक द्वादशाक्षर मन्त्र द्वारा अल्पकाल में प्रभु प्राप्ति कर ली।

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥

(श्रीमद्भागवतजी १/३/२८)

इच्छामय नरबेष सँवारें।
होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता।
करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥

(श्रीरामचरितमानसजी, बालकाण्ड-१५२)

सबके मूलभूत अंशी तो श्रीकृष्ण ही हैं। उन अच्युत की आराधना से सभी देव उसी प्रकार आराधित हो जाते हैं जैसे मूल सींचने से सम्पूर्ण वृक्ष सिंचित हो जाता है –

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

(श्रीमद्भागवतजी ४/३१/१४)

'यथा तरोर्मूल' अंशी की पूजा से समस्त अंश तृप्त व पूजित हो जाते हैं अतः कृष्णोपासना परमावश्यक है।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी ३/३३)

जब तक नीच प्रकृति नहीं बदलेगी, वहाँ निग्रह निष्फल ही रहेगा। सासंग भजन से प्रकृति परिवर्तन होता है। आसुरी, राक्षसी एवं मोहिनी इन तीनों निकृष्ट प्रकृति से उन्मुक्त हो मनुष्य दैवी प्रकृतिवान हो जाता है –

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी ९/१३)

सासंगता बनाये रखने के लिए ही 'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा' में ऐसे 'ध्वनि विस्तारक यन्त्र' (sound system) लगाए जाते हैं, जिससे सुदूर तक कीर्तन ध्वनि पहुँचे एवं प्रत्येक यात्री सासंगोपासना करते हुए अपनी यात्रा सफल बनाये। सासंगता से सरसता आती है।

निःशुल्क यात्रा का हेतु निष्काम-भक्ति

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी २/४९)

निष्काम कर्म से सकाम कर्म निश्चित ही अत्यंत नीच है। फलाकांक्षी कृपण मनुष्यों का मुख दर्शन भी महापाप है। कामना त्याग वाला जीव ही स्थितप्रज्ञ है। कामना मन को चंचल करती है। कामना त्याग से कर्म शक्ति संपन्न हो जाता है। आज से ७० वर्ष पूर्व यात्राओं में पहले ३०-३० हजार यात्रीगण पैदल चलते थे, जिससे कूप जल विहीन हो जाते थे लेकिन कामना का प्रवेश होने से, पारस्परिक विघटन व राजस बढ़ने से वह बात अब नहीं रही। श्रीकृपालु जी महाराज के यहाँ भी किसी समय अखण्ड हरि नाम चलता था, उस कीर्तन प्रेम ने ही विवश किया पूज्य गुरुदेव को बरसाना में रुकने का। अनेकों को ब्रजवास मिला इस कीर्तन प्रेम से। 'श्री राधा रानी ब्रज यात्रा' पूर्णतया निःशुल्क है, सतत् भगवन्नाम की सासंगता होने से यह लोकोत्तर स्तर तक पहुँच गयी। ब्रह्मज्ञानी मोक्षार्थियों का कार्य फलाकांक्षा त्याग कर भगवन्नाम से आरम्भ होता है –

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी १७/२३)

ॐ, तत्, सत् भगवन्नाम के द्वारा ही यज्ञ, तपादि समस्त कर्मों का शुभारम्भ होना चाहिए । सांसारिकों का कार्य बिना भगवन्नाम के आरम्भ होता है, ब्रह्मचारियों का नहीं । प्रश्न है कि ॐ, तत्, सत् ये तीन ही नाम क्यों कहे, अन्य केशव, गोविन्द आदि नामों का निर्देश क्यों नहीं किया? श्री ब्रह्मोवाच –

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥

(श्रीमद्भागवतजी ३/९/१५)

नहीं-नहीं, समस्त नामों का निर्देशन किया । जब नाम नामी भेद रहित हैं तो नाम-नाम में कैसा भेद? अवतार सम्बन्धी – नन्दनन्दन, देवकीनंदन ... आदि । गुण सम्बन्धी – दीन बंधु, भक्तवत्सल ...आदि । लीला सम्बन्धी – माखन चोर, गिरिधारी....आदि। प्राणोत्सर्ग के समय, जो इनमें से किसी भी नाम का उच्चारण करता है, वह अनेकानेक जन्म में संचित अघराशि छोड़कर अविलम्ब अपावृत सत्य को प्राप्त कर लेता है ।

धाम निष्ठ कौन?

साम्प्रदायिक-संकीर्णता विहीन पुरुष ही सच्चा धाम निष्ठ है ।

महत् जनों के शापानुग्रह से धाम-प्राप्ति –

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तपो विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥

(श्रीमद्भागवतजी १०/१६/३६)

जो चरण रज कमला को दुष्प्राप्य है, वह कालिय नाग को कैसे प्राप्त हो गई?

इसका मूल कारण है धाम की कृपा । गरुड़ से घायल होकर कालिय, भाई शेष जी के कथनानुसार दीर्घ काल तक श्री वृन्दावन धाम यमुना जी में रहे, उस धाम वास के परिणाम स्वरूप ही दुर्लभ वस्तु श्रीकृष्ण चरण रज की प्राप्ति हो गई । गरुड़ के क्रोधानुग्रह से धाम और धाम के अनुग्रह से धामी की प्राप्ति हुई। अतएव राजा बलि ने कहा कि सबसे श्लाघ्यतम वस्तु दण्ड ही है ।

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् ।
यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥

(श्रीमद्भागवतजी ८/२२/४)

धामवास से धामापराध का विनाश

करि मन वृन्दावन सों हेत ।
निसि दिन छिन छाया जिनि छाँड़हि रसिकन कौ रख खेत ॥
जहँ श्रीराधा मोहन विहरत करि कुंजनि संकेत ।
पुलिन रास रस रंजित देखत मन मथ होत अचेत ॥
वृन्दावन तजि जे सुख चाहत तेई राच्छस प्रेत ।
'व्यास' दास के उर में बैठयौ मोहन कहि-कहि देत ॥

प्रायः लोग ऐसा कह दिया करते हैं कि धाम में मत जाओ, धाम में अधिक देर मत रहो, नहीं तो धामापराध करोगे । श्रीभगवानुवाच – पार्थ सृष्टि में ऐसा कोई कर्म है ही नहीं जिसमें दोष न हो, सेवा करोगे तो उसमें भी ३२ प्रकार के सेवापराध हैं तो क्या सेवापराध के भय से सेवा करना ही बंद कर दोगे?

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी १८/४८)

नाम लेते हो तो नाम में भी १० प्रकार का नामापराध है तो क्या नाम लेना ही बंद कर दोगे? भक्तापराध के भय से क्या भक्त सेवा करना ही छोड़ दोगे? यदि ऐसा है तो वस्त्र गन्दे होने के भय से वस्त्र पहनना भी छोड़ दो । भगवदाज्ञा तो यह है कि सदोष कर्म का भी त्याग अनुचित है ।

प्रयास करो कि धामापराध न हो किन्तु इसके बहाने धाम वास कदापि न छोड़ो । यदि धाम में रहते हुए कोई पाप हो भी जाएगा तो धाम ही सब अपराधों का उन्मूलन कर देगा । ब्रह्मा जी का गौवत्स एवं ग्वालबालों की चोरी का अपराध धाम ने नष्ट किया, जो इन्द्र के अपराध से भी बड़ा था क्योंकि इन्द्र द्वारा प्रलयकालीन मेघों द्वारा वर्षा कराने पर

सब ब्रजवासियों, गौ एवं गौवत्सों के गिरिराज जी के नीचे एक स्थान पर आने से कृष्ण मिलन प्राप्त हुआ किन्तु ब्रह्मा जी ने ग्वाल-बालों एवं गौवत्सों का हरण कर वियोग करा दिया इसलिए ब्रह्माजी का अपराध ज्यादा बड़ा था जो धाम परिक्रमा से सहज ही नष्ट हो गया। सिय निंदकों का अपराध धाम ने नष्ट किया। धाम का अवतार ही हम जैसे महापातकियों के उद्धारार्थ हुआ है। जो लोग ऐसा कहते हैं कि ब्रज में अधिक समय नहीं रहना चाहिए तो वे सब आचार्य विरुद्ध बातें कहते हैं –

वृन्दावन तजि जे सुख चाहत तेई राच्छस प्रेत।
'व्यास' के उर में बैठयो मोहन कहि-कहि देत॥

(व्यासवाणी)

महाप्रभु श्री चैतन्य देव ने रूप-सनातन आदि षड्-गोस्वामी गणों को स्वयं ब्रज में भेजा एवं वहाँ के स्थलों का उद्धार किया, कराया। सभी आचार्य, गोस्वामी गण आकर यहाँ रहे।

संसार स्वाद सुख बांत ज्यौं दुहुँ 'रूप-सनातन' त्यागि दियौ॥
गौड़देश बंगाल हुते सब ही अधिकारी।
हय गय भवन भण्डार विभौ भू-भुज उनहारी।
यह सुख अनित्य बिचारि बास वृन्दावन कीन्हौ।
यथा लाभ सन्तोष कुञ्ज करवा मन दीन्हौ।
ब्रजभूमि रहस्य राधाकृष्ण भक्त तोष उद्धार कियौ।

(भक्तमाल छप्पय-८९)

"वृन्दावन ब्रजभूमि जानत न कोऊ प्राय दई दरसाय जैसी शुक मुख गाई है।"

(भक्तमाल कवित्त-३५८)

ब्रज के मणि-मुक्तामय कण-कण का श्री शुकदेव जी ने गूढ़ गान किया, तत् समस्त रूप-सनातन आदि आचार्यों ने प्रकट किया, स्वयं महाप्रभु जी ने श्री राधा कुण्ड को प्रकट किया, ब्रज में ऐसे कई स्थल हैं जैसे भांडीर कूप (मत्स्य कूप) — यहाँ स्नान से प्रभु के १४ अवतारों की लीला का फल मिलता है। ऊँचे गाँव में ब्रजवासियों को त्रिवेणी कूप में ३ धाराएँ दिखाई श्री नारायण भट्ट जी ने। धाम कालातीत है, यह बात निर्विवाद है। भगवद् इच्छा से धाम का आविर्भाव-तिरोभाव होता रहता है। इन अचिन्त्य भावों को असत्तर्क से नहीं समझा जा सकता है।ब्रज का प्रत्येक गाँव, प्रत्येक वीथी श्रीकृष्ण लीला से अंकित है। यहाँ घर-घर में श्रीकृष्ण की बाल लीला हुई है। सूरदास जी ने कहा –

प्रथम करी हरि माखन चोरी।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन आपु भजे ब्रज खोरी॥
मन में यहै बिचार करत हरि ब्रज घर-घर सब जाऊँ।
गोकुल जनम लियौ सुख-कारन सबकैं माखन खाऊँ॥
बालरूप जसुमति मोहि जानै गोपिनि मिलि सुख भोग।
'सूरदास' प्रभु कहत प्रेम सौं ये मेरे ब्रज लोग॥

यह पद बोध कराता है, श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा की है कि ब्रज का कोई भी गाँव, कोई भी घर, मेरी लीला से वंचित नहीं रहेगा। "ब्रज प्रेमानन्द सागर" में व अन्य रसवेदी जनों ने ब्रज के सभी अचर-सचर प्राणियों को पूज्य व लीला का सहायक बताकर अद्भुत लीला अंकित की है।

स्वामी श्रीहरिदासजी की वाणी में –
मन लगाय प्रीति कीजै कर करवा सों ब्रज वीथिन दीजै सोहनी। गो गो सुतन सों मृगी मृग सुतन सों और तन नेक न जोहिनी। 'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी सों चित ज्यों सिर पर दोहिनी।

अथवा –

"नव निकुंज सुख पुंज महल में सुबस बसो यह गाँवरो।"

(केलिमाल-४४)

न जाने किस गाँव की किस वीथी में युगल रसराज मिल जायें –

कदा वा खेलन्तौ व्रजनगरविथीषु हृदयं
हरन्तौ श्रीराधाव्रजपतिकुमारौ सुकृतिनः।
अकस्मात्कौमारे प्रकटनवकिशोर-विभवौ
प्रपश्यन्पूर्णः स्यां रहसि परिहासादि निरतौ॥

(श्रीराधासुधानिधि - ६५)

ब्रज का कण-कण लीला विहारी की लीला से चिन्हित है, इसलिए यहाँ के रज-कण की महिमा अद्वितीय व अलौकिक है | ब्रह्मरज का अपभ्रंश ही ब्रज-रज है अतएव "रज में रज होय मिलूँ ब्रज में" इस अभिलाषा की पूर्ति के लिए अनेकानेक धाम के रसिकजनों ने यहाँ आजन्म निष्ठा सहित निवास किया । ब्रजरज-प्रेमियों की हार्दिक इच्छा यहाँ की रज बनने (ब्रजभूमि में सर्वात्मभाव से समर्पित होने) की होती है -

ब्रज की रज में धूर बनूँ मैं ऐसी कृपा करो महाराज ॥
धूर बनूँ हरि चरनन पागूँ,
उड़ उड़ के अंगन में लागूँ,
बार बार ये ही मैं माँगूं,
मोपै विहरैं श्याम राधिका सब दुख जावैं भाज ॥
कोमल चरन राधिका प्यारी,
उर धरि सेवैं छैल बिहारी,
ऐसौ रस चरनन में भारी,
वाकूँ पाऊँ बनूँ धन्य वृन्दावन रस सरताज ॥
रज में खेलैं रंग मचावैं,
रज में हिल मिल रास रचावैं,
रज में फूलन सेज बिछावैं,
रज में करैं विलास जुगल मिलि जानैं रसिक समाज ॥
ब्रज की धूर श्याम को प्यारी,
खाई बालकृष्ण मुख डारी,
धमकावैं जसुदा महतारी,
माखन दूध दही तज रोवै रज खावन के काज ॥

(श्रीबाबामहाराज द्वारा संरचित रसिया-रसेश्वरी से संग्रहीत)

अनन्त की एक बूँद भी तो अनन्त होती है –

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

(ईशोपनिषद्)

पूर्ण से पूर्ण निष्कासित करो तो पूर्ण ही शेष रहता है । ब्रज-भावना भी यही कहती है –

सद्योगीन्द्रसुदृश्यसान्द्ररसदानन्दैकसन्मूर्तयः
सर्वेप्यद्भुतसन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने संगता ।
ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्यद्रश्याश्च ये
सर्वान्वस्तुतया निरीक्ष्य परम स्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥

(श्रीमद्राधासुधानिधिजी - २६४)

ब्रजरज-रसिक 'श्रीसूरदासजी'

जबसूरदासजी अन्तिम समय में संसार को छोड़कर नित्य लीला में प्रवेश करना चाहते थे, तो उस समय अति वियोगावेश में सूरदासजी महाराज सभी वैष्णवों की ओर मुख करके ब्रजधरा को वक्ष से लगाकर लेट गये | लोग पहुँचे तो सोचा कि सूरदासजी को कष्ट है, इन्हें सीधा कर दें | सीधा करने लगे तो सूरदासजी ने मना कर दिया और कहा कि जिस ब्रजभूमि को सदा उत्तमांग दिया, उसे गमनकाल में पृष्ठ (पीठ) कैसे दे सकता हूँ | श्रीसूरदासजी के इस भाव को प्रत्यक्ष देख-सुन भावुकजनों के प्रेमाश्रु बहने लगे; समस्त भक्त-समुदाय को धाम-निष्ठा की बहुत बड़ी साक्षात् प्रेरणा मिली |

यह वही धरा है जहाँ स्वयं पूर्णपुरुषोत्तम भी क्रीड़ारत है | यह रज वैष्णव भक्तों को प्राणों से अधिक प्यारी है; यहाँ के काँटे, यहाँ की मिट्टी, यहाँ के कष्ट सब प्यारे हैं; वो अभागे हैं जो यहाँ के कष्टों से घबड़ाते हैं, वे ब्रजभाव को जान ही नहीं सकते | ब्रज का जो अनुरागी होता है वह तो कहता है –

"कोटि मुक्ति सुख होत गोखुरू जबै लगत गड़ि पाँयन |"

ब्रज का काँटा जब लगता है, वह करोड़ों मुक्ति के समान सुख देता है, उसको ब्रज का भक्त कहते हैं | रसखानजी ने भी लिखा है –

"कोटिक ही कलधौत के धाम, करील की कुंजन ऊपर वारौं |"

करोड़ों सोने के महल भी इन करील की कटीली कुँजों पर न्यौछावर हैं | रसकुल्याकार का कथन है –

यद्वा व्युत्क्रमेण मनोभावस्थापनबलकरणापत्तः ।
आद्येषु स्वत एव भावोत्पत्तेराराध्यता

द्वितीयेषु लौकिकभावदेहादिदर्शनाद्भावनाबलेन स्वाराध्यता तृतीयेषु बहिः प्रयान्तमपि भावं बहुसिद्धान्तबलेन स्थापनात् परमस्वाराध्यतेति।

तीन प्रकार का श्रद्धा बल बताया –

१.मनोबल २.भावना बल ३. स्थापना बल

श्रीठाकुरजी व उनके लीला परिकर के लिए मन में अनायास जो आराध्य-भाव है, वह 'मनोबल' है।

ब्रजसेवियों का ब्रज भाव एवं कठिन शारीरिकचर्या को देखकर उनके प्रति आराध्य-भाव हो जाना 'भावना बल' है। जहाँ मन एवं भाव की गति नहीं है वहाँ स्थापना बल स्थापित करना होगा। जो अत्यन्त क्रूर एवं पापी हैं, देखने-बोलने योग्य भी नहीं हैं, उनमें सिद्धांत के बल पर परमस्वाराध्य बुद्धि करें, यही 'स्थापना बल' है। लीला परिकर-वर्ग केवल आराध्य हैं, ब्रजसेवी उनसे बढ़कर स्वाराध्य हैं। अतिशय क्रूर एवं पापीजन तो आराध्य, स्वाराध्य से भी श्रेष्ठ परम स्वाराध्य हैं। स्थापना बल ही ब्रजभाव है, यही धामापराध से बचा सकता है।

श्रीव्यासजी का स्थापना बल –

नीच चाण्डाल तक की वन्दना कर रहे हैं –

वृन्दावन के श्वपच की जूठन खाइए मांग।
व्यास मिठाई विप्र की तामे लागो आग॥

श्रीअभयरामजी का स्थापना-बल –

धन धन वृन्दावन के बामन ।
'अभयराम' ये हू बड़भागी बामन है कि रावन॥

अथवा

"धन-धन वृन्दावन के गदहा प्यारे।"

अथवा

धन-धन नन्दगाँव के श्वान।
भोर साँझ सुन इष्ट आरती नित्य निकासत भौं-भौं तान॥

दर्शन, सम्भाषण के अयोग्य ब्रज के अत्यन्त क्रूर, पापी जीव योगीन्द्र-मुनीन्द्रों से भी धन्य हैं, रस मूर्ति हैं –

वृन्दारण्ये वरं स्यां कृमिरपि परतो नो चिदानन्ददेहो रङ्कोऽपि स्यामतुल्यः परमिह न परत्राद्भुतानन्तभूतिः। शुन्योऽपि स्यामिह श्रीहरिभजन लवेनातितुच्छार्थमात्रे लुब्धो नान्यत्र गोपीजनरमणपदाम्भोजदीक्षासुखेऽपि॥

(श्रीवृन्दावन शतक-२/१)

श्रीवृन्दावनधाम में कृमि ही बन जाऊँ तो अत्युत्तम है परन्तु अन्यत्र दिव्य देह भी नहीं चाहता हूँ। यहाँ अतुल्य दारिद्रमय जीवन भी अच्छा है किन्तु अन्यत्र दिव्य विभूतियों की भी इच्छा नहीं है। "वृन्दावन में मंजुल मरिबो" यहाँ भजन शून्य होकर घोर वैषेयिक जीवन भी उत्तम है ।

किन्तु गोपीजनवल्लभ की चरण शरण छोड़कर अन्यत्र गमन करना नहीं चाहता –

श्रीराधेरानी मोहि अपनी कर लीजै।
और कछु मोहि भावत नाहिं, श्री वृन्दावन रज दीजै।
खग मृग पशु पंछी या वन के, चरण शरण रख लीजै।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, महल टहलनी दीजै।
हे राधाया रतिगृहशुकाः! हे मृगा! हे मयूराः!
भूयोभूयः प्रणतिभिरहं प्रार्थये वोऽनुकम्पाम्॥

(श्रीमद्राधासुधानिधिजी - २६२)

श्रीजी के रति-गृह ब्रज के निवासी मृग, मयूर, शुक, पिक को बारम्बार नमन कर इनकी अनुग्रह वर्षा चाहते हैं।

'श्रीराधासुधानिधिकार' का कथन है –

राधानामसुधारसं रसयितुं जिह्वास्तु मे विह्वला पादौ तत्पदकाङ्कितासु चरतां वृन्दाटवीवीथिषु।
तत्कर्मैव करः करोतु हृदयं तस्याः पदं ध्यायतां तद्भावोत्सवतः परं भवतु मे तत्प्राणनाथे रतिः॥

(श्रीमद्राधासुधानिधिजी - १४१)

जिसकी जिह्वा केवल राधा नाम ही लेती है, जो केवल धाम में ही रहता है, जिसका शरीर केवल सेवा में ही रहता है एवं हृदय में केवल चरणों का ही ध्यान है, उसे ही रसानुभूति होगी। अभी तो हमारी स्थिति यह है कि राधा नाम ही नहीं लेते इतर चर्चा तो बहुत करते हैं, धाम में वास भी नहीं हो पा रहा है। कुछ तो स्वदोष (अपने अवगुणों) के कारण ही नहीं आ पाते हैं और कुछ जो आना चाहते हैं, उन्हें ऐसे मार्गदर्शक मिल जाते हैं जो कहते हैं कि धाम में निवास मत करो, अपराध होगा। ठीक है अपराध से भय करो किन्तु इस भय से धामवास मत छोड़ो, क्योंकि धामवास से ही सिद्धि मिलेगी।

व्यापकं ब्रज उच्यते

रसीली ब्रजयात्रा -२ से संग्रहीत

संकलनकर्त्री - बाल साध्वी रानी जी, मानमन्दिर, बरसाना

"व्रजनं व्याप्तिरित्युक्त्या व्यापनाद् व्रज उच्यते ॥

(भा.माहा.स्क.पु. १/१९)

व्रज अर्थात् व्याप्ति। अत्यधिक व्यापक होने से ही इस भूमि को ब्रज कहा गया। अस्मदीय आचार्यचरणों ने ब्रज के गौरवग्रन्थरत्नों का निर्माण करके व्यापक ब्रज के विशद वैभव का बहुविधि वर्णन किया।

'वैभव' से तात्पर्य – ब्रज का ऐश्वर्य, समृद्धि, यश, महत्त्व, प्रतिष्ठा। 'विभु' का ही भाव 'वैभव' है अतः 'वैभव' माने 'व्यापकत्व'। वस्तुतः इसकी प्राचीनता व महत्ता, इसकी नित्यता से ही अनुमेय है।

पद्मपुराण निर्वाण खण्ड –

नित्यां मे मथुरां विद्धि वनं वृन्दावनं तथा।
यमुना गोपकन्याश्च तथा गोपाल बालकान् ॥

(श्रीरूपगोस्वामी विरचित 'मथुरा-माहात्म्य' से)

'मथुरा किंवा वृन्दावन' नाम से संज्ञित होने वाला यह सम्पूर्ण ब्रज नित्य है। श्रीयमुना, गोपिका, ग्वाल भी नित्य हैं। यदा-कदा नित्य वस्तु में भी मर्त्यगुण (आविर्भाव-तिरोभाव) लक्षित होते हैं किन्तु इससे उसकी नित्यता बाधित नहीं होती।

श्रीसूरदासजी की वाणी में ब्रज

ब्रज-बीथिन, पुर-गलिनि, धरै-घर, घाट-बाट सब सोर मचायौ।

(सूरसागर)

श्रीसूरदासजी कहते हैं कि ब्रजभूमि का कोई नगर, पुर, वन, वीथि – कहाँ तक कहें कोई घर, कोई घाट भी शेष नहीं रहा, जहाँ लीला न हुई हो। अतः यहाँ के पर्वत, कुण्ड, सरोवर, वन, उपवन एवं ग्रामों का नाम लीलानुगत ही है। जैसे – श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने से ग्राम का नाम 'खोह', मथुरा-प्रस्थान के समय शीघ्र (सी) परश्वः (परसों) आने के आश्वासन से ग्राम का नाम 'सी पलसों', दूध की लीला होने से 'पयगाँव', खम्ब के गढ़ने से 'खाम्बी', वनचर होने से 'वनचारी', सत्राजित का वास होने से 'सतवास', बिछुर जाने से 'बिछोर', जहाँ श्रीराधारानी ने स्वप्न देखा, वह स्थल विशेष 'सुपाना' एवं नन्दबाबा का कोष होने से 'कोसी' हुआ। इस प्रकार सभी ग्रामों के नाम 'लीला' से सम्बन्धित हैं। श्रीगिरिराजजी 'गोवर्द्धन-उद्धरण लीला' का प्रत्यक्ष प्रमाण है। काम्यवन की चरणपहाड़ी, भोजनथाली, स्खलिनी शिला, बरसाना की खोर साँकरी (जहाँ की शिला दही के गिरने से आज भी स्निग्ध है), छोटे भरने की मुकुट शिला – सम्पूर्ण ब्रज आज भी साढ़े पाँच हजार वर्ष प्राचीन धरोहर से भरा हुआ है। ऐसे अनेक प्राचीन लीला चिन्ह हैं जो श्रीयुगल सरकार की त्रैकालिक लीला का साक्ष्य (प्रमाण) दे रहे हैं।

वाराहपुराणानुसार –

आद्यसृष्टि में (सतयुग के प्रारम्भ में) भगवान् वाराह ने इसी सनातन अवनि को अपनी जन्मभूमि कहा; यह माथुर मण्डल मुझे परमप्रिय है। सिद्ध होता है कि वाराहावतार के समय से इसे 'माथुर मण्डल' कहा जाता रहा है।

सुरभ्या च सुशस्ता च जन्मभूमिः प्रिया मम ॥

(वाराहपुराण १५०/११)

विंशतिर्योजनानां तु माथुरं मम मण्डलम् ॥

(वाराहपुराण १५६/१)

प्रलय के पूर्व भी ब्रज-वसुधा की विद्यमत्ता थी व प्रलयान्त में भी; जैसा कि गर्गसंहिता में 'वाराह प्रभु व पृथ्वी देवी के सम्वाद' से स्पष्ट होता है –

पृथ्वी – "मेरे बिना ये तरु किस आधार पर खड़े हैं?"

वाराह – "देवी! यह तो नित्य भूमि है। प्रलय-जल-प्लावन से संख्यातीत भूखण्ड उच्छिन्न हो जाते हैं किन्तु 'प्रलयेऽपि न संहृता' प्रलय में भी ब्रज भूमि का नाश नहीं होता।"

'ब्रज' ही नहीं 'ब्रजयात्रा की परम्परा' भी सनातनी है। श्रीवाराह भगवान् द्वारा तरणि-तनूजा के तटवर्ती एवं चतुष्कोण में स्थित वनोपवनों का वर्णन ऐसे सुव्यवस्थित यात्रा क्रम से है, जिससे ज्ञात होता है कि सतयुग के आरम्भ में श्रीवाराह देव ने ब्रजयात्रा की, तत्पश्चात् ब्रज के वनोपवनों का क्रमशःगान किया। वाराह भगवान् का कथन है कि समस्त भूमण्डल में ६० करोड़ तीर्थ हैं, वे समस्त मथुरा मण्डल में हैं।

श्रीमद्भागवत के अनुसार –

अरिष्टासुर वध के पश्चात् गोपियों ने कहा – हे कृष्ण! गोहत्या के महापाप से मुक्त होने के लिए तुम्हें सभी तीर्थों में स्नान करना चाहिए तब श्रीकृष्ण विनीत भाव का परित्याग करते हुए गर्वित होकर उन्हें सुनाकर कहने लगे – त्रिभुवन पर्यटन करने जाऊँगा भला मैं? देखो मैं अभी यहाँ पृथ्वी पर स्थित सभी तीर्थों को लाकर उसमें स्नान करूँगा। यह बात कहते हुए बायें पैर की एड़ी से जोर से पृथ्वी पर आघात किया। तब पाताल से भोगवती गंगा का आविर्भाव हुआ। उसको देखकर कृष्ण ने कहा – 'हे तीर्थ समूह आओ, आओ' उनके ऐसा कहने पर विश्व के निखिल तीर्थ उस जल में प्रविष्ट हो गये।

किं पर्यटामि भुवनान्यधुनैव सर्वा आनीय तीर्थ वितनीः करवाणि तासु।
स्नानं विलोकयत तावदिदं मुकुन्दः प्रोच्यैव तत्र कृतवान् वत पार्ष्णिघातम्॥
पातालतो जलमिदं किल भोगवत्या आयातमत्र निखिला अपि तीर्थसंघाः।
आगच्छेति भगवद्वचसा त एत्य तत्रैव रेजुरथ कृष्णं उवाच गोपीः॥

(विश्वनाथ चक्रवर्तीजी कृत भागवत टीका १०/३६/१५)

वेदान्तर्गत ब्रज

ब्रज तो नित्य भूमि है। वेदान्तर्गत ब्रज-वर्णन से प्रतीत होता है मानो ब्रज ने वेद को शिरोभूषण धारण कराकर उसे गौरवान्वित किया है। अतः यह कथन अभिनीत (उचित) ही होगा कि वेदों से ब्रज नहीं प्रत्युत ब्रज से वेदों की भी अति प्राचीनता, महत्ता व नित्यता अवगत होती है।

इन्द्र के प्रति मधुच्छदा ऋषि के वचन –

गवामप 'व्रजं' वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः॥ (ऋग्वेद १/१०/७)

सुरेन्द्र! तुम्हारा प्रदत्त गोधन चतुर्दिक् प्रसरित है अतः पर्वतों को शोभित करते हुए गो सम्पन्न ब्रज की वृद्धि करें। ऋषि नाभानेदिष्ट कहते हैं –

इन्द्रेणयुजा निःसृजन्तवाघतो 'व्रजं' गोमन्तमश्विनम्॥

(ऋग्वेद १०/६२/७)

श्रीअंगिरा ने इन्द्र सहयोग से अश्व एवं गोयुक्त ब्रज का उद्धार किया।

अग्नि के प्रति अंगिरा-पुत्र हिरण्यस्तूप के वचन –

त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन्निपर्षि विदथे विचर्षणे।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित्समृता हंसि भूयसः॥

(ऋग्वेद १/३१/६)

अग्नि के प्रति वार्हस्पत्य भारद्वाज के वचन –

हे अग्नि! ब्रज-निवासी उस पुरुष को जो निज ब्रज में पुनः जन्म का पिपासु है एवं जो शूरसेन श्रेणी के शौर्य से गर्वित है, प्रचुर धनान्न से सम्पन्न करो।

अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः॥

(ऋग्वेद ५/४५/१)

विसूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद् गवां माता जानती गात्।
धन्वर्णसो नद्यः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः॥

(ऋग्वेद ५/४५/२)

गोधन से सम्पन्न **'ब्रज-वसुन्धरा'** स्वर्ग से भी उत्कृष्ट है, मानवों में देवों की तेजस्विता है।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में –

८/४१/४९, १/८३/३, १/९२/४, १/१०१/११, ५/४५/६, ८/५१/५, ५/४५/६,

१/१०१/८ .....आदि अनेकों मन्त्रों में ब्रज की विस्तृत चर्चा है। ब्रज के वन, पर्वत, सरसी (सरोवर), नदियाँ (यमुना, कृष्ण गंगा, मधुमती, सरस्वती), गिरि-कन्दरा, गोप, गोधन, ग्राम देव, मथुरा के अधिपति दीर्घविष्णु, प्रस्कन्दन सूर्यतीर्थ, बहुला गाय, यज्ञ वाराह .....आदि का वर्णन भी प्राप्त है।

अथर्ववेद में ब्रज

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः।

अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥

(अथर्ववेद २०/७७/६)

विद्वान देवराज इन्द्र ने स्वसख्य जलवर्षी मेघों द्वारा विश्वभर में वर्षा की है। अपनी गड़गड़ाहट की भीषण ध्वनि से मानो गिरि-शिलाओं को तोड़ रहे हैं, वे गायों से समृद्ध "ब्रज" पर सब ओर से वर्षा करते हैं।

ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं स्रावयामसि ॥

(अथर्ववेद १/१५/४)

ब्रज की जो गायें दुग्ध-घृत की नदी प्रवाहित करती हैं एवं जो नदियाँ सुमधुर शीतल जल से भरकर बहती हैं, ऐसे दूध, घृत, अन्न-प्रवाह से मेरे घर में धन बहता हुआ आये। इन समस्त वेदोक्त वाक्यों से सिद्ध होता है ब्रज व गो का परस्पर सम्बन्ध है।

मानो विदद् वृजिना द्वेष्याया ॥

(अथर्ववेद १/२०/१)

हे विधाता! ब्रज-विद्वेषी का सम्पर्क कदापि न देना।

सामगान में ब्रज धाम

शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ 'गोमति व्रजे' भजात्वं नः ॥

(सामवेद पूर्वा, ऐन्द्र ३/२१/६)

हे देवेन्द्र! तुम शूरवीर नरासंशित कामप्रद हो, तुम हमारे **'गो-समृद्ध ब्रज'** में आओ, हम तुम्हारा यजन करते हैं।

अपो वृणानः पवते कवीयान्व्रजं न पशुर्वधनाय मन्म ॥

(सामवेद पूर्वा, पावमान पर्व ५/७/७)

पवमान सोम! तुम सुन्दर वृषों की सृष्टि करते हो, काव्यवर्णित हमारे ब्रज में पशु-सम्वर्धन के लिए आओ।

इसी प्रकार अन्य अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं –

अभि 'व्रजं' तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥

(साम पूर्वा, पावमान पर्व ५/११/८)

अस्माँ अव मघवन् गोमति 'व्रजे' वज्रिं चित्राभिरुतिभिः ॥

(साम. उत्तरा. ४/४/२)

सर्वसन्मुख है ब्रज का यह व्यापकत्व। कोई अनभिज्ञ ब्रज के पुरातन इतिहास एवं विस्तीर्ण क्षेत्र का, संकीर्णमति की संकुचितता के कोरक में सीमाबद्ध होकर अन्वेषण करना चाहे तो सर्वथा असम्भवही होगा। साथ ही यह भी निश्चित है कि वह सम्पूर्ण ब्रज को अत्यन्त संकुचित कर देगा।

महाभारत में ब्रज वसुन्धरा

मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना, मति-मति में मतभेद होने से ब्रज का परम-पावन पुरातन इतिहास एक विकर्षण- विषय (खींचतान का विषय) बना दिया गया। दोष भी किसे दें, चूंकि इस उदार ब्रज-धरणी ने अपने अंक में न जाने कितने ही वंश (कुषाण, शुंग, मौर्य, गुप्त .....आदि) एवं धर्मों (शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, जैन) को आश्रय दिया।

एतावता परिवर्तन पर परिवर्तन होते रहे एवं इतिहास भी परिवर्तित होता रहा।

महाभारत एक ऐसा बृहत् इतिहास है जिसके विषय में स्वयं श्रीव्यासजी का कथन है कि "यन्नेहास्ति न कुत्रचित्" जो विषय इस विश्व-कोष में नहीं है, वह कहीं भी नहीं है, फिर भारत के प्राचीनतम ऐतिहासिक ग्रंथ में ब्रज की चर्चा न हो ऐसा तो सम्भव ही नहीं।

यह वो भूमि है जहाँ महाभारत के रचयिता श्री वेदव्यास जी ने दीर्घकाल तक दिव्य तप किया एवं महाभारत के प्रधान नायकों (पाण्डवों) का प्रवास रहा।

ब्रज व पाण्डव

पाण्डवों ने महाभारत महासमर की सफलता हेतु अपने औरस पिता (इन्द्रादि) देवों से दिव्य शस्त्रास्त्र शिक्षा प्राप्त करने का विचार किया। काम्यवन में निवास कर रहे पाण्डवों को श्रीव्यासजी ने भी प्रतिस्मृति विद्या (श्रुत को तत्क्षण धारण कर लेने वाली विद्या) प्रदान की एवं देवों से मिलने के लिए कहा।

"ययौ सरस्वती कूले काम्यकं नाम काननम्"

(महाभारत, वनपर्वणि, अर्जुनाभिगमन पर्व-३६/४१)

पाण्डवों की ब्रज से कितनी घनिष्ठता रही, यह एक ज्ञातव्य विषय है। १२ वर्ष वनवास काल में पाण्डवों का ब्रजेतर प्रान्तों की अपेक्षा ब्रजवास ही अधिकांश हुआ।

पाण्डवों के पुरोहित महर्षि धौम्य भी कश्यप वंशज माथुर थे।

नित्यधाम की सीढ़ी 'धरा-धाम'

रसीली ब्रजयात्रा -२ से संग्रहीत

संकलनकर्त्री - साध्वी नवीनाश्री जी, मानमन्दिर, बरसाना

गर्गसंहितानुसार देवों के प्रार्थना किये जाने पर श्रीकृष्ण ने अवतार लेने का निश्चय किया। लीला-सिद्धि के लिए श्रीकृष्ण ने श्रीराधारानी से भौम धाम में अवतरित होने की प्रार्थना की किन्तु गोलोकेश्वरी श्रीराधारानी ने वृन्दावन, यमुना, गिरिराज के बिना अवतार लेने से मना कर दिया, इस पर श्रीकृष्णाज्ञा से सम्पूर्ण ८४ कोस ब्रजमण्डल का गोलोक से अवतरण हुआ । सर्वप्रथम स्वयं श्रीयमुनाजी श्रीराधामाधव के सेवार्थ यहाँ इस भूमि में आईं।

<u>श्रीनन्ददासजी की वाणी में –</u>

नेह कारनै जमुना जू प्रथम आईं।

पुनः

भक्त पै करी कृपा श्री जमुना जू ऐसी।
छाँड़ि जिन-धाम विश्राम भूतल कियो,
प्रगट लीला दिखाई हो तैसी॥

पुनः 'यही धाम, यही श्रीयमुनाजी' श्रीकृष्ण-प्राप्ति करायेंगे।

भाग, सुहाग श्रीजमुना जू दैई।
बात लौकिक तजौं, पुष्टि जमुना (जू) भजौं,
लाल गिरधरन बर तब मिलैई।
भगवदीन संग करि, बात उनकी लै सदाँ,
सानिधि इहि देति भैई।
'नंददास' जा पै कृपा श्री वल्लभ करैं,
ताको श्री जमुना जू सरबस जो दैई॥

<u>आदिपुराणे –</u>

त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या यत्र वृन्दावनं पुरी।
तत्रापि गोपिकाः पार्थः यत्र राधाभिधा मम॥

श्रीकृष्ण बोले – अर्जुन ! सम्पूर्ण त्रिलोकी में मेरा भू-लोक ही धन्य है, जहाँ श्रीवृन्दावनधाम, उसमें भी गोपीगण और उसमें भी मेरी परम प्रियतमा श्रीराधा विराजमान हैं।

यहाँ की गाय भी सामान्य नहीं है। इन्हें किसी भी स्थिति में पशु न समझें। भगवान् की ज्ञानशक्ति उपनिषदादि ही गाय बने हैं। शतककार कहते हैं –

ब्रह्मानन्दमवाप्य तीव्रतपसा सम्यक् प्रसाद्येश्वरं
गोरूपाः सकला इहोपनिषदः कृष्णे रमन्ते व्रजे।
वृन्दारण्यतृणं तु दिव्यरसदं नित्यं चरन्त्योऽनिशं
राधाकृष्णपदाम्बुजोत्तम रसास्वादेन पूर्णाः स्थिताः॥

(श्रीवृन्दावन-महिमामृतम् १/१२)

"परोक्षवादा ऋषयः"

सब कुछ प्रत्यक्ष नहीं है और सब कुछ इन आँखों से देखा जाने वाला भी नहीं है। क्योंकि भौम ब्रज में भी तो नित्य भूमि गोलोक, साकेतादि का अवतार होता है।

कोलम्बस ने समुद्र के उस पार जाकर अमेरिका की खोज की, इसके पूर्व कौन जानता था? फिर जो अतीन्द्रिय वस्तु है, उसे मानवीय परिच्छिन्न इन्द्रियों से कैसे समझा जा सकता है?

एक ही उपाय है – "अनुभावना"

अनुभावना क्या है?

<u>श्रीसूरदासजी की वाणी में –</u>

इहाँ हरि जू बहु क्रीडा करी सो तो चितते जात न टरी॥
इहाँ पय पीवत बकी संहारी शकट तृणावर्त इहाँ हरि मारी॥
वत्सासुर को इहाँ निपात्यो बका अघा इहाँ हरिजी धात्यो॥
हलधर मार्‌यो धेनुक को इहाँ देखो ऊधव हत्यो प्रलंब जहाँ॥
इहाँ ते ब्रह्म हमको गयो हरि और किये हरि लगी न पलक घरि॥
ते सब राखे संपति नरहरि तब इहाँ ब्रह्मा आय अस्तुति करि॥
इहाँ हरि कलि उर्ग निकास्ये लगेउ जरावन अनल सो नास्यो॥
वस्त्र हमारे हरि जु इहाँ हरि कहाँ लगी कहिये जे कौतुक करि॥
हरि हलधर इहाँ भोजन किये बिप्र तियन को अति सुख दिये॥
इहाँ गोवर्धन कर हरि धार्‌यो मेघवारि ते हमें निवार्‌यो॥
शरद निशा में रास रच्यो इहाँ सो सुख हम पे बरन्यो जात कहाँ॥
ऋषभ असुर को इहाँ संहार्‌यो भ्रुम अरु केशी इहाँ पछार्‌यो॥

इहाँ हरि खेलत आँख मुचाई कहाँ लगि बरनै हरि लीला भाई ॥
सुनि-सुनि ऊधो प्रेम मगन भयो लोटत घर पर ज्ञान गरब गयो ॥
निरखत ब्रज-भूमि अति सुख पावै 'सूर' प्रभु को पुनि-पुनि गावै ॥

यह वही धाम है, जहाँ का प्रत्येक रज-कण स्वामी श्री हरिदास जी, श्री हिताचार्य जी, श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु जी, श्रीमद्वल्लभाचार्य जी आदि के लिए इष्टरूप था।

वहाँ हमको-तुमको दूषण के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता है।

यदि इसके चिन्मय रूप की अनुभावना की जाय तो बुद्धि निर्मल हो जाय और धाम इष्ट रूप हो जाय।

अनुभावना तब तक करते रहें जब तक कि वह भक्तियोग न बन जाये।

रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्दृश्यं दृक्तु मानसम्।
दृश्या धीवृत्तयः साक्षी दृगेव न तु दृश्यते ॥

(दृग्दृश्यविवेकः अथवा वाक्यसुधा – १ भारती तीर्थ स्वामिना विरचितः)

रूप को देखने वाले न नेत्र हैं, न मन और न बुद्धि ही, ये सब तो स्वयं दृश्य है।

'साक्षी दृक् इव न तु दृश्यते'

वास्तविक द्रष्टा तो आत्मा ही है।

नेत्र, मन, बुद्धि, आत्मा (अर्थात् भगवान् का अंश) – ये सब क्रमशः एक दूसरे से सूक्ष्म हैं और श्रेष्ठ भी।

भूल यहीं होती है कि द्रष्टा में जब तक भक्तियोग सिद्ध न हो तब तक अनुभावना का क्रम निरन्तर रखना आवश्यक है। असत् वस्तु में चित्त का दौड़ना कल्पना है एवं सत् वस्तु में चित्त का दौड़ना भावना है। भावना के बिना न भक्ति सिद्ध होगी न ज्ञान ही। ज्ञानमार्ग में देखें तो **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"** समग्र संसार को ब्रह्मरूप में स्वीकार करना होगा। निन्दक, चोर, डाकू, सबको ब्रह्म मानना होगा।

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी ५/२४)

अन्तरात्मा में रमण करने वाला योगी ही ब्रह्मनिर्वाण अर्थात् ब्रह्मरूपता की प्राप्ति करता है। जिसका मन साम्य में स्थित हो गया, उसके लिए सब संसार निर्दोष हो गया। इस भावना के बिना "ब्रह्मभाव" सिद्ध नहीं होगा। ब्रह्मभावना हो अथवा ब्रजभावना गुण-दोष दृष्टि के जाने पर ही भावनासिद्धि सम्भव है।

सभी महापुरुषों ने इसी भूमि की भावना व याचना की –

'यही है यही है भूलि भरमौ न कोऊ'

(महावाणी सिद्धान्त सुख-१२)

अथवा

'जनम-जनम दीजै याही ब्रज बसिबो।'

(छीतस्वामी)

इसी भूमि में चिन्मय धाम की भावना ही ब्रजभावना है।

अहो तेऽमी कुञ्जास्तदनुपमरासस्थलमिदं
गिरिद्रोणी सैव स्फुरति रतिरङ्गे प्रणयिनी।
न वीक्षे श्रीराधां हरि हरि कुतोऽपीति शतधा
विदीर्येत प्राणेश्वरि मम कदा हन्त हृदयम् ॥

(श्रीमद्राधासुधानिधिजी - २११)

आहा ! ये वे ही कुञ्जें हैं जो श्रीराधामाधव के समय में थीं। यह वही अनुपम रास-स्थल है, श्रीप्रिया-प्रियतम के रति रंग से प्रेम करने वाली यह वही गोवर्धन की कन्दरा है; यह सम्पूर्ण ब्रज वही है, जहाँ श्रीकृष्ण एक-एक रज कणिका को पवित्र करते हुए चले हैं, दौड़े हैं, बैठे हैं और कभी-कभी तो रमण रेती आदि क्षेत्रों में रज ही बिछाते हैं, रज ही ओढ़ते भी हैं। अब कोई कहे यह तो मिथ्या कल्पना है तो मिथ्या ही सही किन्तु ऐसी मिथ्या भावनाओं से भी लोक कल्याण हो तो कितना उत्तम है। जहाँ मौग्ध्य व सर्वज्ञत्व एक कालाविच्छिन्न रहता है, वह है अति प्राकृत नर लीला। यह वो भूमि है, जहाँ भगवान् अति प्राकृत लीला करते हैं।

धामी के पूर्व अवतारकाल में वही नित्य गोलोक, साकेत यहाँ मधुपुरी व अवधपुरी के रूप में अवतीर्ण होता है।

ध्यान रहे, नित्यधाम तक पहुँचने की सीढ़ी यह अवतरित अधिभूतधाम ही है। साक्षात् नित्यधाम तो कोई नहीं पहुँच सकता, इसके लिए तो माया के अवयवों का भेदन, तत्पश्चात् विरजा का सन्तरण, तब कहीं नित्यधाम की प्राप्ति सम्भव है और यदि अधिभूतधाम का आश्रय ले लिया तो बिना किसी प्रयास के सहज ही नित्यधाम की प्राप्ति हो जाएगी।

जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥

(श्रीरामचरितमानसजी, उत्तरकाण्ड - ४)

अतः गोस्वामीजी ने इस पुरी की वन्दना की –

बंदउँ अवध पुरी अति पावनि।
सरजू सरि कलि कलुष नसावनि॥

(श्रीरामचरितमानसजी, बालकाण्ड -१६)

कहाँ तक कहें, अवतरितधाम अपनी सहजता व सुलभता के कारण नित्यधाम से भी श्रेष्ठ हो जाता है।

अहो मधुपुरी रम्या वैकुण्ठाच्चगरीयसी।

(पद्मपुराण, पातालखण्ड) एवं (भक्तिरसामृतसिन्धु -१, २.२३७)

स्वयं धामी को भी अवतरितधाम, नित्यधाम से कहीं अधिक प्रिय हो जाता है।

बज्र द्वारा प्रतिष्ठापित ब्रज

स्कान्दे – ८१ हजार श्लोकों का यह ग्रन्थ ब्रज-वर्णन से पुराणशिरोभूषण बन अलौकिकता को प्राप्त हो गया।

महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं –

लीलैवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी॥

(स्कन्दपुराणोक्त भागवत-माहात्म्य १/२५)

भगवल्लीला द्विविधा है - (१) व्यावहारिकी (२) वास्तवी।

वास्तवी लीला में देश, काल, अवस्थादि का व्यवधान नहीं है, यह अक्षुण्ण रूप से चलती रहती है।

व्यावहारिकी में अजन्मा का जन्म होता है तो एक निश्चित काल पर धामगमन भी होता है। ऐसा होने से भौम धाम में लीला व्यवहित हो जाती है।

किन्तु यह मृण्मय चिन्मय धाम ऐसा है जहाँ व्यावहारिकी के साथ वास्तवी लीला भी हो रही है, जो अबाध रूप से देशातीत, कालातीत स्थिति में सतत् हो रही है।

अत्रैव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितम्।
भासते प्रेमपूर्णानां कदाचिदपि सर्वतः॥

(भागवत, उत्तरमाहात्म्य - १/२८)

नाम, रूप, लीला की सनातनी पीयूषवर्षिणी है यह ब्रजभूमि किन्तु यह लीलारस, लौकिक मर्त्य विषय रस तृषित जिह्वा से आस्वाद्य नहीं है। इसके अधिकारी तो कृष्णरसलम्पट ही हैं, इनके सन्मुख स्वसंवेद्य वास्तवी लीला भी व्यक्त हो जाती है।

द्वापरान्त में श्रीकृष्ण के धामगमनोपरान्त मथुरामण्डल में बज्रनाभजी (कृष्ण-प्रपौत्र) का राज्याभिषेक हुआ।

शाण्डिल्याज्ञा से बसाया बज्र ने ब्रज

तस्माच्चिन्ता न ते कार्या वज्रनाभ मदाज्ञया।
वासयात्र बहून् ग्रामान् संसिद्धिस्ते भविष्यति॥
कृष्णलीलानुसारेण कृत्वा नामानि सर्वतः।
त्वया वासयता ग्रामान् संसेव्या भूरियं परा॥

(भागवत-उत्तरमाहात्म्य - १/३६, ३७)

बज्रनाभजी के समय में ब्रज केवल सघन वन व जनशून्य स्थान था। महर्षि शाण्डिल्य ने बज्रनाभजी को ब्रज के सार्वभौम सर्वाङ्गीण उद्धार की आज्ञा दी – "बज्र ! भगवल्लीलाओं की चिरस्मृति के लिए लीला-स्थलियों पर पुर, नगर, ग्राम बसाये जाएँ, लीलानुसार उनका नामकरण हो, जिससे भावी-भावुकों के लिए यह भूमि चिरकाल तक दर्शनीय, सेवनीय, उपासनीय बनी रहे।"

प्रत्येक ग्रन्थ में वर्णित वस्तु का प्रतिपाद्य विषय अवश्य होता है। भागवत का दशम स्कन्ध इस बात का उद्घोष है कि भागवत का प्रतिपाद्य केवल श्रीकृष्ण की रसमयी लीलाएं हैं। ब्रज का कण-कण इन विश्व कल्याणकारिणी लीलाओं से अनुप्राणित है।

"प्रथम करी हरि माखन-चोरी।

मन में यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाऊँ ॥"

(सूरसागर)

भागवतकार ने भगवान् की जन्म से दर्भस्थली (द्वारिका) निर्माण, प्रयाण तक के लीला उपक्रम में ब्रज की समस्त लीलाओं का गान तो किया किन्तु उन पुण्यमय स्थलों का नाम निर्देश नहीं किया चूंकि लीलोन्मज्जित श्रीशुकाचार्य का लक्ष्य अधिकाधिक लीला प्रतिपादन था।

"कारणाभावात् कार्याभावः" इस सर्वमान्य न्याय सिद्धान्तानुसार कार्य के पीछे कारण की पृष्ठभूमि निश्चित है अर्थात् बिना कारण के कार्य की कल्पना भी सम्भव नहीं है अतः ब्रज है 'कारण' व लीला है 'कार्य'। ब्रज के बिना लीला सिद्धि सम्भव नहीं। इसका प्रमाण दिया श्रीव्यासजी ने –

धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि।

(श्रीमद्भागवतजी १/१/१)

कालाभाव में, मैं केवल कार्य (लीला) को गाऊँगा, कारण सिद्धि (ब्रज) स्वयं जान लेना।

'धाम्ना स्वेन सदा .....' आज प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है श्रीव्यासजी का यह कथन। धाम से ही तो माया का निरसन व भक्ति का प्रकाशन हो रहा है।

आज भी करोड़ों लोगों को ब्रज में आने से भक्ति लाभ प्राप्त हो रहा है। कैसे? धाम (कारण) से किन्तु कार्य (ब्रज-वर्णन) को भी छोड़ा नहीं श्री शुकदेवजी ने। लीलागान की शैली से सब कुछ लपेट कर सन्मुख कर दिया – ब्रज के खेट, खर्वट, वाटी, पुर, ग्राम, नगर, वन, उपवन, नदी, पर्वत, ओखर (जल आकर), पोखर (पुष्करिणी), सरोवर, कूप, पशु-पक्षी आदि। अर्थात् इन सब लीला-स्थलियों पर अभूतपूर्व लीलाओं का गान किया। ये लीला ही लीला-स्थलों का परिपुष्ट प्रमाण है अतः महामुनि शाण्डिल्य ने भी बज्रनाभजी को ब्रज की नदी, पर्वत, घाटी, सरोवर, कुण्ड एवं वन-कुञ्जों की सेवा-संरक्षण की आज्ञा दी।

"नद्यद्रिद्रोणिकुण्डादिकुञ्जान् संसेवतस्तव"

(स्कन्दपुराण, भागवतमाहात्म्य १/३९)

'सच्चिदानन्दमयी इस धरा पर प्रभु ने कौन-सी लीला कहाँ सम्पन्न की, यह मुझे कैसे ज्ञात होगा? ' बज्रनाभ विचार ही कर रहे थे।

शाण्डिल्य –

'तव कृष्णस्थलान्यत्र स्फुरन्तु मदनुग्रहात्।'

(स्कन्दपुराण, भागवतमाहात्म्य - १/४०)

महर्षि शाण्डिल्य बोले – "मेरे अनुग्रह से तुम्हें सभी लीला-स्थलों पर कृष्ण लीलाओं का स्फुरण हो जायेगा।"

अनन्तर श्रीबज्रनाभजी द्वारा ब्रज की लीला-स्थलियों का पुनरोद्धार हुआ, आपके द्वारा प्रतिष्ठापित देव-विग्रहों में गोविन्ददेव, हरिदेव, बलदेव और केशवदेव आदि हैं।

आप साधना चैनल पर प्रात: ०६ :४० से पूज्यश्री रमेश बाबाजी महाराज

एवं प्रात: ०७ :०० बजे से ब्रजबालिका श्रीजी का नित्य सत्संग देख सकते हैं।

धाम-निष्ठा का निष्कर्ष

श्रीबाबामहाराज के यात्रा-सत्संग (१७/११/२०१३) से संग्रहीत

संकलनकर्त्री - साध्वी ब्रजबालाजी, मानमन्दिर, बरसाना

जिस प्रकार भयंकर भवाटवी में भटकते हुए पतितात्माओं पर कृपावश अनंत करुणावरुणालय भगवान् धराधाम पर अवतरित होते हैं, ठीक इसी प्रकार धाम का अवतरण भी भयानक भवसिंधु में गोता खा रहे बद्ध जीवों पर कृपा करने के लिए होता है | जो लोग ब्रजधाम में सैरसपाटे (पिकनिक) के उद्देश्य से आते हैं और मौजमस्ती करके अथवा तफरी करके चले जाते हैं, उनकी बात अलग है अन्यथा जो लोग यहाँ निष्ठापूर्वक अखंडवास करते हैं, उनके बारे में वृन्दावन शतककार लिखते हैं –

श्रीगान्धर्वारसिकतिलकौ स्वेषु योग्यं यमेकं,
ज्ञात्वान्योन्यं विमृशत इदं कीदृशोन्वेष भाव्यः |

(श्रीवृन्दावनमहिमामृत ६/३५)

'गान्धर्वा अर्थात् 'श्रीराधारानी', 'रसिकतिलकौ' का अर्थ है 'श्रीकृष्ण' | जब राधामाधव युगलसरकार ब्रज की किसी निकुंज में विराजित होते हैं तो मृत्युपर्यन्त अखंड ब्रजवास की प्रतिज्ञा लेकर यहाँ रहने वाले उस ब्रजप्रेमी भक्त की परस्पर चर्चा करते हैं और कहते हैं कि वह अनन्य शरणागत जो हमारे धाम में पड़ा हुआ है, जिसने अपना जीवन धाम के लिए समर्पित कर दिया, उसका क्या हाल-चाल है?

'भगवान् की शरणागति व धाम की शरणागति' एक ही है | नाम, धाम, रूप, गुण, लीला, जन, धामी – ये सातों तत्व एक ही हैं | नामनिष्ठ हो जाओ तब भी वही फल मिलेगा, रूपनिष्ठ हो जाओ, लीलानिष्ठ हो जाओ, जननिष्ठ हो जाओ अथवा धामनिष्ठ हो जाओ, इन सबका समान महत्त्व है | इसलिए श्रीजी और श्यामसुंदर जब एकांत निकुंज में बैठते हैं तो परस्पर वार्तालाप करते हैं, एक-दूसरे से विचार करते हैं | श्रीराधारानी श्यामसुंदर से पूछती हैं – 'हे प्यारे ! वह अनन्य भावुक जो हमारे धाम का आश्रय लेकर यहाँ निवास कर रहा है, उसका समाचार मुझे सुनाओ ?' कभी श्यामसुन्दर राधारानी से पूछते हैं – 'हे राधे ! वह जो आपके धाम में पड़ा हुआ है, क्या आपको उसकी सुध है ?' श्रीजी कहती हैं – 'हाँ, मुझे उसकी अच्छी तरह याद है |' धाम में निष्ठापूर्ण भाव से निवास करने का यह निष्कर्ष होता है कि स्वयं युगलसरकार अनन्य धामप्रेमी की परस्पर चर्चा करते हुए स्मरण करते हैं | इसी प्रकार नामनिष्ठ का भी यह फल होता है –

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे । आवत हृदयँ सनेह बिसेषें ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड २१)

रूप नहीं देखा है किन्तु नाम का स्मरण करो तो उस रूप का आविर्भाव अपने-आप हो जाएगा |

अब यह विचार करना चाहिए कि इस धाम में काँटे दिखाई देते हैं, कंकण दिखाई देते हैं, गली-गली में मल-मूत्र दिखाई पड़ता है तो हम यहाँ श्रद्धा कैसे करें? यह प्रश्न हमारे समक्ष है | यहाँ चोर, गिरहकट (जेब कतरे) आदि अपराधी दिखाई पड़ते हैं, दुराचारी लोग भी दिखाई पड़ते हैं, ऐसी स्थिति में हम धाम के प्रति श्रद्धा कैसे करें ? इसका उत्तर यही है कि ठीक है, धाम में विकृतियाँ दिखायी पड़ती हैं परन्तु यह हमारी आँखों का ही दोष है जो हमें धाम में दूषण और दूषित प्रकृति के लोग दिखाई पड़ते हैं नहीं तो परम ब्रजरसिक संत ध्रुवदासजी ने कहा है –

प्रगट जगत में जगमगे, वृंदाविपिन अनूप |
नयन अछत दीखै नहीं, यह माया को रूप ||

नेत्रों की स्थूल दृष्टि होने के कारण हमें धाम का वास्तविक स्वरूप दिखाई नहीं पड़ रहा है क्योंकि नेत्रों में माया का आवरण है | यह आवरण कब हटता है? यह कृपा से हटता है | कृपा कब होती है? जब अहंता-ममता चली जाती है-

येषां स एष भगवान् दययेदनन्तः,
सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां,
नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥

(श्रीमद्भागवतजी २/७/४२)

यह शरीर कुत्ते और सियार का भोजन है | मृतक शरीर को बाहर फेंक दिया जाये तो उसे कुत्ते और सियार खा जाते हैं | शरीर के प्रति जब अहं और मम् की वृत्ति हट जाती है तब समझ लेना चाहिए कि भगवान् की कृपा हो गयी और हम माया पार कर गये | कृपा कब होती है? जब सर्वात्म भाव से हम भगवान् की शरण में जाते हैं | सर्वात्म भाव क्या है? सर्वात्म भाव का अभिप्राय है – इंद्रियां भगवान् के लिए, मन भगवान् के लिए समर्पित हो जाये | जैसे श्रीमद्भागवतानुसार महाराज अम्बरीष का जीवन था-

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥

(श्रीमद्भागवतजी ९/४/१८)

मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसङ्गमम् ।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥

(श्रीमद्भागवतजी ९/४/१९)

पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरोहृषीकेशपदाभिवन्दने ।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्ययायथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥

(श्रीमद्भागवतजी ९/४/२०)

नेत्रों द्वारा भगवद्भक्तों के, भगवान् की मूर्तियों के, उनके चित्रपटों के दर्शन करना चाहिए | कानों द्वारा केवल भगवान् की कथा का श्रवण किया जाये, जिह्वा से भगवान् का गुणगान होना चाहिए, यह सर्वात्मभाव से भगवान् की शरणागति है | भगवान् ने गीता में भी कहा –

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

(श्रीमद्गीताजी १८/६२)

अर्जुन ! तू सर्वभाव से शरण में जा, निश्चित ही तुझ पर कृपा होगी | अवश्य ही शान्ति की प्राप्ति होगी |
हम जैसे लोगों में यही कमी है कि हम बहिर्मुख हो गये हैं | हमारी इन्द्रियाँ विषयों की ओर जा रही हैं | भक्ति क्या है, इसे समझो | भक्ति यह नहीं है कि १०-५ मिनट हमने कुछ नियमों का पालन कर लिया तो हम भक्त बन गये | भगवान् ने भागवत में कहा है –

देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम् ।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥

(श्रीमद्भागवतजी ३/२५/३२)

देवानां गुणलिंगानां माने ज्ञानेन्द्रियाँ, ये अपने विषयों शब्द, स्पर्श, रस, रूप, और गंध का बोध कराती हैं | लीनं अर्थयन् गमयति इति लिंगम् | गुणलिंग इंद्रियां अर्थात् ज्ञानेन्द्रियाँ तथा आनुश्रविक कर्मणाम् अर्थात् कर्मेन्द्रियाँ तथा मन की स्वाभाविक वृत्ति भगवान् में हो जाये, यही भक्ति है | हम लोग कुछ निश्चित संख्या में जपमाला से जप करके सोचते हैं कि हम भक्त बन गये | नहीं, श्रीमद्भागवत के प्रमाण से कपिल भगवान् के अनुसार सभी इन्द्रियाँ, चाहे वे ज्ञानेन्द्रियाँ हैं अथवा कर्मेन्द्रियाँ हैं अथवा मन है, ये एकमात्र भगवान् में, श्रीराधारानी में, श्रीकृष्ण में लग जायें तो बेड़ा पार है, पृथ्वी से लेकर समस्त ब्रह्मांड में फिर कोई रोकने वाला नहीं है | ब्रह्माजी अथवा काल की भी शक्ति नहीं है ऐसे भक्तिमान को रोकने की, बाधित करने की |

एक अन्य प्रमाण यह है कि चित्रकूट में जब भरत जी भगवान् राम से मिलने के लिए गये तो उन्होंने राम जी को वन से अयोध्या वापस लाने का प्रयत्न किया परन्तु रामजी लौटे नहीं | उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि मैं तो पिताजी की आज्ञा से वन में ही निवास कर १४ वर्षों के पश्चात् ही अयोध्या आऊँगा | उसी प्रसंग में भरतजी ने वहाँ धामोपासना किया | धामोपासना क्या है, यह कैसे प्रकट होती है, इसे ध्यानपूर्वक समझें | भरतजी ने कहा 'मुझे चित्रकूट धाम की परिक्रमा करनी है |' चित्रकूट भी रामलीला का स्थल है | जितने भी धाम हैं, ये भगवान् की इच्छा से अवतरित होते हैं, क्यों अवतरित होते हैं? जीवों

के कल्याण के लिए ही इनका अवतरण होता है | जैसे भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं तो जीवों के कल्याण के लिए | भगवन्नाम क्यों प्रकट होता है? जीवों पर दया करके भीषण भवसागर से उबारने के लिए ही हरिनाम का प्राकट्य होता है | इसी प्रकार भगवान् की इच्छा से जीवों पर दया-कृपा की वर्षा हेतु ही धाम का भी अवतरण होता है | जो भक्त हैं, वे धाम के प्रति भाव रखते हैं, जो भक्त नहीं हैं, वे धाम के प्रति कोई भाव नहीं रखते हैं | धाम के प्रति भाव का उदय कैसे होगा? धाम के उपासकों के साथ यदि रहा जायें, उनका संसर्ग (उनकी सन्निधि में निरन्तर निवास) किया जाये, तो धाम की भक्ति अवश्य ही उत्पन्न होगी अन्यथा नहीं होगी | धाम के प्रति प्राकृत भाव ही बना रहेगा | भरतजी की चित्रकूट की परिक्रमा के प्रति उत्कट लालसा को देखकर श्री राम जी ने सहर्ष ही उनका अनुमोदन किया, अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी | जब भरतजी चित्रकूट परिक्रमा को चले तो उनका समस्त परिवार और सम्पूर्ण अयोध्यावासी, जो उनके साथ आये थे, वे भी उनके साथ ही परिक्रमा के लिए चल दिये | उस समय चित्रकूट सघन अरण्य (जंगल) था | वहाँ के वातावरण का गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस चौपाई में सटीक चित्रांकन किया है –

कुस कंटक काँकरीं कुराईं। कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – ३११)

जंगल में कुश थे, जो पाँव में गड़ जाते हैं, काँटे थे, कंकड़ियाँ थीं, जो पाँवों में चुभ जाती हैं और कष्ट प्रदायक होती हैं, कुराई अर्थात् खराब रास्ते थे | घने जंगलों में रास्ता भूल जाने पर राहगीर को बहुत भटकना पड़ता है | (ब्रजागमन के पूर्व चित्रकूट प्रवास के दौरान पूज्य श्रीबाबा महाराज को भी एकबार मार्ग भूल जाने पर ददरी के जंगल में रात्रिपर्यन्त बहुत अधिक भटकना पड़ा था | लोग कहते थे कि वहाँ सिंहों का बहुत अधिक भय था | अतः एक जगह एकांत में पूज्यश्री को रात्रि व्यतीत करनी पड़ी; प्रभातकाल में उन्होंने देखा कि हिरन भाग रहे थे और एक सिंह उनका पीछा कर रहा था |) कुराई (खराब रास्ते) का यह दुष्परिणाम होता है कि मनुष्य अपने मार्ग से भटक जाता है | जंगल में कटुक वस्तुयें जैसे किवाच आदि होती हैं | किवाच का यदि शरीर से स्पर्श हो जाये तो खुजली उत्पन्न कर देगा | 'कुवस्तु' का अर्थ है - जंगल में दूषित वस्तुयें मल-मूत्र आदि भी स्थान-स्थान पर पड़े होते हैं | कठोर वस्तुयें, जैसे - हड्डियाँ भी जंगलों में यत्र-तत्र बिखरी रहती हैं | भरतजी द्वारा भाव के सहित चित्रकूट धाम की परिक्रमा किये जाने पर वहाँ की धरती ने इन अशुभ, अपवित्र और कष्टप्रद वस्तुओं को छिपा लिया | यह धामोपासना का ही फल था कि अड़चनें आयीं किन्तु धाम की चमत्कारिक शक्ति ने उनको छिपा दिया | काँटे फूल बन गये, कंकड़ियाँ, कुराई, कटुक वस्तुयें और मल-मूत्र आदि लुप्त हो गये और पृथ्वी पर सुन्दर मार्ग का प्राकट्य हो गया –

महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – ३११)

सुंदर वायु बहने लगी | **'कोमल चरन चलत बिनु पनहीं।'** बिना पादत्राण धारण किये ही श्रीभरतजी व परिवार सहित शत्रुघ्नजी, सब मातायें, अयोध्यावासियों के साथ चित्रकूट की परिक्रमा कर रहे हैं | इसको धामोपासना कहते हैं | **"भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं॥"** पृथ्वी संकुचित हो गयी, कोमल बन गयी | **"सहित समाज साज सब सादें।"** धाम में सादगी के साथ रहना चाहिए, यहाँ जो लोग बन-ठन कर आते हैं, वे धामोपासक नहीं हैं | धाम में आओ तो छोटे बनो, दीन बनो, सादे बनो | **"चले राम बन अटन पयादें॥"** इस प्रकार से भगवान् के वन अर्थात् भगवद्धाम में भ्रमण करना चाहिए | धाम में दीनता और सरलतापूर्वक रहने से क्या होता है? जैसा कि भरतजी और उनके अनुयायियों के साथ हुआ | **"सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं।"** देवता तुम्हारे ऊपर फूल बरसायेंगे, बादल छाया करेंगे | **"बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं॥"** वृक्षों से अपने-आप फूल-फल गिरेंगे धामोपासक के लिए |

सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात।
राम प्रानप्रिय भरत कहुँ यह न होइ बड़ि बात॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - ३११)

सच्चे धामोपासक के लिए समस्त सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं, प्रकृति सहायता करती है, देवगण पुष्प-वर्षा करेंगे यदि हम लोगों में सच्ची धाम की आराधना आ जाएगी |

Glory of Dhaam

(Shri Brajmohan Das ji)

nāma nirüpaëa nāma jatana te
sou pragaöat jimi mola ratana te
(rämacaritra-mänasa bälakänd – 23)

Just like how faith is required for one to perform *näma sankértana* and how the glories of the holy name are revealed by making an endeavor and adopting the practice of repeatedly chanting the holy names, similarly, by faithfully serving the *dhäma*, it's form, glories and its miraculous nature gets revealed. Just like how one cannot know the glories of the Lord and his holy name without the association of devotees, similarly, without the association of great personalities, one cannot know the abode, its glories and the influence it has on all.

How should one reside in this abode?

In this life of ours, it is very important for one to take shelter of the holy name and the abode of the Lord. Without the holy name, one cannot become fully dedicated toward the *dhäma*. If one is staying in the *dhäma*, but the holy name is not a part of his life, *Thäkurajé's* name, form, qualities and pastimes are absent; his mind is absorbed in mundane talks and useless dealings, then his stay in the *dhäma* won't bear any fruit.

Çré Dhruva Däsji Mahäräja from our Çré Rädhä Vallabha-sampradäya has said –

våndävana mein vasata hé eito baòo sujäna
yugala candra ke bhajana binu nimiña na déjau jäna

One will only be able to perfect the limb of *dhäma-väsa,* if he takes full shelter of the holy name and lives there. Even one moment in the *dhäma* should not pass by, in which you have not discussed or heard the glories of *bhagaván*. Usually people visit the *dhäma* to eat tasty foodstuffs. This practice should be stopped as it is not the purpose of visiting the *dhäma*. One's stay in the *dhäma* would only be successful, if his life passes by discussing and hearing the Lord's name, form, qualities and pastimes.

श्रीराधारानी ब्रजयात्रा एक अनोखा सफर

यों तो ब्रज-वसुंधरा के पावन दर्शन को न केवल भारतवासी अपितु समग्र भू-भाग से श्रद्धालुजन यहाँ आते हैं और अपने सौभाग्य को सराहते हैं परन्तु 'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा' अपने में एक अलौकिक परिदृश्य प्रस्तुत करती है | 'ब्रज के परम विरक्त संत' जिनकी कीर्ति-पताका सर्वत्र सूर्योदय की भाँति आलोकित हो रही है | अनंतानंत जन्मों के कल्मष को धोकर परमपुरुष जगदाधार श्रीकृष्ण-मिलन का मार्ग प्रशस्त करने वाले सहज-सुलभ साधन को जिन्होंने दिया है, उन महापुरुष का वह साधन उक्त ब्रजयात्रा के रूप में विश्व-विख्यात है | यात्रा में ब्रजभूमि के प्रति जो आकर्षण महाराजश्री ने प्रस्तुत किया है, उससे एक बहुत बड़ा समूह विभिन्न प्रान्तों व देशों से मानमंदिर में एकत्रित होता है जो विविध भाषा, पहनावा, रहन-सहन के बाद भी एक परिवार की भाँति विविधता में एकता का दर्शन कराता है | कण-कण में श्रीकृष्ण-दर्शन की लालसा हर यात्री को अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए विवश करती है | एक स्थान से दूसरे स्थान का सफर कितना ही लम्बा हो, वह बहुत छोटा ही प्रतीत होता है | कई किलोमीटर लम्बी कतार साधारण जनमानस को यह सोचने को विवश करती है कि इस जनसमूह का क्या कोई ओर-छोर है ? इन सबके मध्य तारतम्य का काम करती है भगवन्नाम की वह रसधारा जो प्रारम्भ से अंत तक सब के मनमस्तिष्क में न केवल तात्कालिक अपितु स्वप्नलोक में भी आनन्ददायिनी औषधि का कार्य करती है | देवाधिदेव इन्द्र व परमपिता ब्रह्मा के अपराध का भी शमन जिस ब्रज-परिक्रमा से हुआ, वह परिक्रमा सम्मिलित सभी यात्रियों के ही नहीं अपितु उसके दर्शन करने वाले हर जीव का पाप-शमन करती है | पापनाशिनी यह यात्रा इसी कारण सर्वथा निःशुल्क रखी गई है | यही नहीं गाँव-गाँव में ब्रजवासियों का जो प्रेम मिलता है वह सम्भवतया अपने घरों में सुलभ नहीं होगा | पारस्परिक सौहार्द्य की एक अनूठी मिशाल प्रस्तुत करती है यह यात्रा | बाबा महाराज की ब्रजवासियों के प्रति इष्टभावना ने उनके प्रेम में कृष्ण-प्रेम का दर्शन कराया है | आओ आप भी 'श्रीराधामाधव के लीलारस व्यापी इस दिव्य सफर' से गुजरो और धन्य बनाओ अपनी जीवनयात्रा को |

वृन्दानि सर्वमहतामपहाय दूराद्वृन्दाटवीमनुसर प्रणयेन चेतः ।
सत्तारणीकृतसुभाव सुधारसौघंराधाभिधानमिह दिव्यनिधानमस्ति ॥

(राधासुधानिधि - ८)

यह धामनिष्ठा का एक अनोखा श्लोक है, जिसमें समस्त महत् वृन्दों को छोड़ने की बात कही गयी है । संसार छूटना तो छोटी बात है । यहाँ पर छोड़ने की बात क्यों कही गयी है? यदि धर्म त्याग अपनी वासना के लिए, कामाचारिता के लिए होता है तो वह एक जघन्य पाप है किन्तु निष्ठा के कारण यदि कोई वस्तु छोड़ी जाती है तो वह गौरव की बात है तथा यह त्याग निष्ठा का संवर्द्धन करता है, निष्ठा को बलवान बनाता है और फिर मनुष्य या साधक उस स्थिति पर पहुँचता है कि उस निष्ठाविशेष के बल पर समस्त विधि-निषेध का अतिक्रमण कर देता है तथा ऐसे साध्य की प्राप्ति करता है, जिसको साधारण पुरुष प्राप्त नहीं कर सकते । देवर्षि नारद जी ने तो यहाँ तक कहा है कि धर्म-त्याग आवश्यक है । नारदजी ने जब भक्तिसूत्र बनाया तो उन्होंने विचार किया कि अपने इस ग्रन्थ में मूर्धन्य भक्त की श्रेणी में किसको रखें? समस्त ब्रह्माण्ड भर के भक्तों की महिमा को विचारकर अन्त में उन्होंने लिखा – **"यथा ब्रजगोपिकानाम् "**ब्रजाङ्गनाओं का ही सर्वोत्तम भक्त के रूप में देवर्षि ने उदाहरण दिया क्योंकि उनकी जो निष्ठा थी, वह समस्त वेदधर्मों का अतिक्रमण कर गई, लौकिक धर्म में उन्होंने माता-पिता, पति-पुत्र आदि समस्त सम्बन्धों की आसक्ति का त्याग कर दिया ।